भगवद्दुर्वासाविरचितं

ललितास्तवरत्नम्

'पूर्णिमा' भाषाटीकासहितम्

एवं

त्रिपुरमहिम्नस्तोत्रम्

नित्यानन्दविरचितव्याख्यासहित 'पूर्णिमा'-हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

व्याख्याकारः

श्री मधुसूदनप्रसादशुक्लः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
644

भगवद्दुर्वासाविरचितं

ललितास्तवरत्नम्

'पूर्णिमा' भाषाटीकासहितम्

एवं

त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

नित्यानन्दविरचितव्याख्यासहित 'पूर्णिमा'-
हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

व्याख्याकारः
श्री मधुसूदनप्रसादशुक्लः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© **सर्वाधिकार सुरक्षित।** इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के विना नहीं किया जा सकता है।

ललितास्तवरत्नम् एवं त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

पृष्ठ : 14+130

ISBN : 978-93-86554-86-4

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

© **सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन**

प्रथम संस्करण 2019 ई०

मूल्य : ₹ 225.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

आर्ष मान्यता के अनुसार मानव-जीवन का परम लक्ष्य है—मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष का अर्थ है—क्लेश-कर्म-विपाक एवं आशय आदि विकारों तथा राग-द्वेष आदि अष्टपाशों एवं मलत्रय से सर्वथा मुक्त होकर अपने शुद्ध-बुद्ध-सच्चिदानन्दमय आत्मस्वरूप को प्राप्त करना और इस आत्मतत्त्व की उपलब्धि होती है उस परमतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति से, जो आत्मतत्त्व का सब कुछ है। अतएव यह जानना आवश्यक है कि वह परमतत्त्व क्या है, कैसा है और आत्मा के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? वह आत्मतत्त्व का सब कुछ क्यों है? इसीलिये शास्त्रों में कहा गया है—'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः' ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। इस परमतत्त्व का ज्ञान गुरुमुख से शास्त्र-उपदेशक्रम से होता है। उपनिषदों तथा अन्य सद्ग्रन्थों में इस परमतत्त्व का लाक्षणिक निरूपण किया गया है। तदनुसार यह परमतत्त्व वस्तुतः सर्वथा निर्विकार, निराकार, एकमेव, अप्रमेय तथा रूप-गुणरहित है। इसकी अनुभूति उच्च कोटि के योगियों के लिये केवल निर्विकल्प समाधि में ही सम्भव है। योग की इस उच्चतम अवस्था को पाना सभी के लिये सम्भव नहीं है। अतः सामान्य साधकों और उपासकों के लिये इस चिन्मय परमतत्त्व के सगुण रूप की शास्त्रों में कल्पना की गई है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

यहाँ 'ब्रह्म' पद उस परमतत्त्व का वाचक है। सद्ग्रन्थों में इस सगुण ब्रह्म के भी अनेक नाम-रूपभेद बताये गये हैं। तदनुसार यह सगुणब्रह्म स्त्री भी है और पुरुष भी। बालक भी है और युवा भी। कुमार भी है और कुमारी भी। ललित है तो विरूपाक्ष भी। भैरव भी है और भैरवी भी। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, भैरव, गणेश, हनुमान, सूर्य, इन्द्र, दुर्गा, चण्डी, कमला, भैरवी, ललिता, काली, तारा, चामुण्डा आदि सब इसी के नाम-रूप हैं। मुमुक्षु साधक अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार सगुण ब्रह्म के इन विविध नाम-रूपभेदों में से किसी भी एक नाम-रूप को अपना इष्ट देवता मानकर अनन्य भक्ति से उस सगुणरूप परमतत्त्व की साधना और उपासना कर सकता है, मगर शर्त यह कि न तो वह ब्रह्म के अन्य रूपभेदों को अपने इष्ट

देवता से भिन्न समझे और न ही उनकी निन्दा या अवमानना करे; क्योंकि ब्रह्म के किसी भी नाम-रूप की निन्दा करने से उसके सभी नाम-रूपों की निन्दा हो जाती है—

एकं प्रशंसमानेन सर्वे देवा: प्रशंसिता:।
एकं विनिन्दमानो य: सर्वानेव विनिन्दति।।

और सगुण ब्रह्म की इन विभिन्न देवमूर्तियों के मध्य पक्षपात करने से वह पापी पुरुष नरक में जाता है—

योऽन्यथा भावयेद् देवान् पक्षपातेन मूढधी:।
स याति नरकं घोरं रौरवं पापपुरुष:।।

मनोवाञ्छित सिद्धि के लिये इष्टदेवता के प्रति सम्पूर्ण समर्पण-पूर्वक अनन्य भक्ति-भाव से उसकी उपासना करनी चाहिए। इष्टदेवता के प्रति यह अनन्य भक्ति ज्ञानाधारित और क्रियामयी होनी चाहिए। ज्ञान के अभाव में यह भक्ति अन्ध भक्ति होगी तो अर्चनरूप क्रिया के अभाव में फल देने में असमर्थ एवं शक्तिहीन। इष्ट-देवता के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति की अभिव्यक्ति इष्टदेवता का गुणगान करते हुए विविध उपचारों से उसकी पूजा और पूजा के बाद मन्त्रजप और स्तुतिपाठ से होती है। इस संक्षिप्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि मोक्षप्राप्ति के लिये अनिवार्यतम तत्त्व होने के बावजूद केवल ज्ञान से अर्थात् केवल शुष्क ज्ञान से मोक्षरूप लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान के साथ इष्टदेवता के प्रति सम्पूर्ण समर्पण-सहित अनन्य भक्ति भी अनिवार्य है, जिसका क्रियामय रूप इष्टदेवता का अर्चन और स्तवन है। इसीलिये भगवान् शङ्कराचार्य ने 'अहं ब्रह्माऽस्मि' के ज्ञान-घोष के साथ ही सगुण ब्रह्म की पूजा-पद्धति को व्यवस्थित रूप दिया तथा उसके विभिन्न रूपों की स्तुति की। कहना नहीं होगा कि तन्त्रोपदिष्ट साधना-विधि की यही आधारभूमि है। अपरा-परापरा और परा आदि भेदों वाली एवं अन्तर्याग तथा बहिर्यागमयी तन्त्रोपदिष्ट उपासना/पूजाविधि का विस्तार इसी केन्द्रीय भूमि से हुआ है।

तन्त्रोपदिष्ट साधना

आजकल तन्त्र को लेकर इतना भ्रम है, इतना अधिक कुहासा है कि तन्त्र का वास्तविक उज्ज्वलतम रूप ओझल हो गया है। वह स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता। वस्तुत: ज्ञान का विस्तार करने वाली तन्त्रोपदिष्ट साधना स्थूल से सूक्ष्म की साधना है। वह साधक को बाह्य प्रपञ्च से मुक्त कर अनन्त सूक्ष्म तक ले जाती है। तन्त्र किसी ऐसे ईश्वर का उपदेश नहीं देता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठकर संसार का शासन करता

है। तन्त्र की दृष्टि में साधक का शरीर ही विश्व (ब्रह्माण्ड) है और उसमें जो आत्मशक्ति निहित है, वही उसका आराध्य देव है—'ललिता वै आत्मा।' साधना द्वारा साधक इसी आत्मशक्ति का दर्शन कर शिवस्वरूप हो जाता है।

साधक का शरीर ही ब्रह्माण्ड है और उसकी आत्मशक्ति ही उसका आराध्य देवता है—इस कथन से स्पष्ट है कि मोक्षकामी तान्त्रिक साधक की साधना का श्रीगणेश पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड की समरूपता एवं आत्मा तथा ब्रह्म के अद्वैतज्ञान से होता है और इसकी चरम परिणति आत्मा के ब्रह्म बन जाने पर होती है। अन्तर्याग और बहिर्याग लक्ष्य तक पहुँचने का साधन या मार्ग है। अत: इसके समस्त क्रिया-विधान का ताना-बाना इसी लक्ष्य के अनुरूप बुना गया है।

इस ज्ञानाधारित एवं भावमयी आत्मानुसन्धानी साधना के क्रिया-विधान का निरूपण करने के पूर्व ही साधना-ग्रन्थों में यह बता दिया गया है कि देवता बनकर ही देवता की पूजा करो—'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' मनुष्यभाव में रहकर अर्थात् देहात्मबुद्धि के साथ देवता की पूजा नहीं की जा सकती। अतएव यदि विष्णु की पूजा करनी है तो विष्णु बनो—(विष्णुर्भूत्वा यजेद् विष्णुं—वशिष्ठरामायण)। शिव की पूजा करनी है तो शिव बनो—(नारुद्र: संस्मरेद् रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्)। इसी प्रकार यदि देवी की पूजा करनी है तो देवी बनकर उनकी पूजा करो (नादेवी कीर्तियेद् देवीं नादेवी देवीमर्चयेत्—भविष्यपुराण)। इसका कारण यह है कि विष्णु, शिव या देवी बने बगैर उनकी पूजा करने से पूजा का कोई फल नहीं मिलता (अविष्णु: पूजयेद् विष्णुं न पूजा फलभाग्भवेत्—वशिष्ठरामायण)। इसका अर्थ यह है कि यदि इस आत्मानुसन्धानी साधना का फल प्राप्त करना है तो सर्वप्रथम अपनी आत्मा को देहात्मबुद्धि से मुक्त करके उसे इष्टदेवता का प्रतिरूप बनाओ। जब तक संसार के प्रति आत्मा की आसक्ति की कारणभूत इस देहात्मबुद्धि का नाश नहीं होगा तब तक आत्मा की मुक्ति सम्भव नहीं है। देहात्मबुद्धि के चंगुल से आत्मा को छुड़ाने का उपाय है—आत्मा में देवत्व का स्फुरण करके उसे समस्त बन्धनों से मुक्त होने के लिये बलशाली बनाना। अत: आत्मा में देवत्व का स्फुरण इस साधना-विधि की पहिली और मूलभूत शर्त है और इस साधन-विधान के प्रत्येक क्रिया-कलाप का ध्येय देवत्व की इस स्फुरणा को क्रमश: विकसित एवं जाग्रत करते चलना है, ताकि स्वराट् (आत्मा) का विराट् (परमतत्त्व) में विलयरूप लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। एतदर्थ यह आवश्यक है कि इस साधन-विधान की प्रत्येक क्रिया देवत्वबुद्धि के साथ सम्पन्न की जाय। ऐसा करने से ही आत्मा को देवताभाव की सिद्धि होती है—

प्राणायामैस्तथा न्यासैः ध्यानैः देवशरीरभृत्। (अग्निपुराण)

यदि साधना की अंगभूत ये क्रियायें देवत्व-बुद्धि के साथ नहीं सम्पादित की जातीं तो वे महज ऐसा कर्मकाण्ड बनकर रह जाती हैं, जिससे कोई फल नहीं मिलता। इसलिये 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है—

एवं विन्यस्तदेहः सन् समाहितमनस्ततः।
अन्तर्यागविधिं कुर्यात् साक्षात् ब्रह्ममयं प्रिये।। (३.१)

'अन्तर्याग' समस्त साधना-क्रम का द्योतक है। इष्टदेवता की भक्ति में तल्लीन होकर (समागतमनः) साधना का क्रम जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, आत्मा की दिव्यता निखरती जाती है। वह इष्टदेवता के उतने ही समीप पहुँचकर तद्रूप बनती जाती है। इस तरह तन्त्रोपदिष्ट साधना एक ही स्थान पर खड़े होकर कदम-ताल करने का पर्याय नहीं है। यह सतत् विकासोन्मुखी और गतिमयी है। इसीलिये इसकी अनेक कोटियाँ हैं, अनेक स्तर हैं, अनेक भेद हैं और इसके अन्तर्गत सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं के फल में भी अन्तर है। यथा—

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमः जपः।
जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमः लयः।।

पूजा अर्थात् धूप-दीप-नैवेद्य आदि स्थूल उपचारों से की गई बाह्य पूजा की अपेक्षा स्तोत्रपाठ अधिक फलदायी है। स्तोत्रपाठ की अपेक्षा मन्त्रजप, मन्त्रजप की अपेक्षा ध्यान और ध्यान की अपेक्षा इष्टदेवता में लय हो जाना अधिक फलप्रद है। इससे स्पष्ट है कि साधना के उपकरण या माध्यम जितने सूक्ष्म होते जाते हैं, वह उतनी ही अधिक फलवती होती जाती है। इष्टदेवता का ध्यान करते-करते इष्ट-देवता के प्रेम में डूब जाना ही समाधि है—

ध्यायतः परमात्मस्थमात्मस्थं यस्य योगिनः।
मनस्तल्लयतां याति समाधिस्थः सः कीर्तितः।।(ज्ञानार्णव)

मनोलयरूप इस समाधि अवस्था को पाकर साधक स्वयं इष्टदेवता-स्वरूप हो जाता है। इस अवस्था में वह अपनी आत्मा में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपनी आत्मा को देखने लगता है। इस अवस्था में जिस सहज आनन्द की अनुभूति होती है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। यह साधना की परा अवस्था है। इस विश्लेषण से साधना में स्तोत्रपाठ का महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

दश-महाविद्यायें

जैसा कि निवेदन किया जा चुका है, उस परमतत्त्व के सगुण रूप के अनेक नाम हैं, अनेक रूप हैं। शाक्तमत में इस परमतत्त्व का साक्षात्कार दश विभिन्न रूपों में किया जाता है, जिन्हें काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी और कमला कहते हैं। परमतत्त्व के ये दश रूप दश महाविद्याओं के नाम से व्यवहृत होते हैं।

पुराण साहित्य में दश महाविद्याओं के आविर्भाव की कथा 'देवीपुराण' में वर्णित है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में भाग लेने के लिये रोके जाने पर सतीरूपा आदि-शक्ति ने शंकरजी के समक्ष अपना जाज्वल्यमान रूप प्रकट किया। शिवजी उनके इस जाज्वल्यमान रूप की ताव नहीं ला सके और वे भाग खड़े हुए। भागते हुए शिवजी को रोकने के लिये आदिशक्ति ने अपनी दश मूर्तियाँ प्रकट कीं। उनकी ये दशधा विभक्त मूर्तियाँ ही महाविद्यायें हैं। इन मूर्तियों ने दशों दिशाओं में स्थित होकर शिवजी को भागने से रोक लिया। इस तरह आदिशक्ति ने शिवरूप काल की दिशा-हीन गति को अवरुद्ध करके ब्रह्माण्ड के आधारभूत अंतरिक्ष की सृष्टि की।

यद्यपि वह महाशक्ति एक ही है; परन्तु जगत्-कार्य के लिये उसने समय-समय पर अपने को विभिन्न रूपों में प्रकट किया। उनके उन दश रूपों में तृतीय क्रम पर भगवती षोडशी का नाम आता है। अपने लोकोत्तर दिव्य सौन्दर्य के कारण वे महात्रिपुरसुन्दरी हैं। कामेश्वर शिव का वरण करने के कारण कामेश्वरी हैं। ललित-विग्रहा होने के कारण ललिता हैं। वे ही भुक्ति-मुक्तिदायिनी पराविद्या हैं। वे ही पाश-अंकुश-धनुष-बाणधरा रक्तवसना श्रीविद्या हैं।

ललितोपाख्यान

भगवती ललिता के आविर्भाव और दिव्य चरित का निरूपण 'ब्रह्माण्ड-पुराण' के 'ललितोपाख्यान' में तथा 'हरितायन-संहिता' में विस्तार से किया गया है। भगवान् रुद्र की कोपाग्नि से दग्ध कामदेव के भस्म से निर्मित चित्र भगवान् शिव के करुणा कटाक्ष से जीवित हो गया। भगवान् शिव ने उसे छ: हजार वर्षों तक संसार का शासन करने का वरदान दिया। प्रजापिता ब्रह्माजी ने उसका नाम 'भण्ड' रखा। चूँकि वह आचरण और प्रवृत्तियों से असुर था; अत: वह भण्डासुर के नाम से विख्यात हुआ। शोणितपुर को राजधानी बनाकर उसने संसार पर शासन प्रारम्भ किया। उसके अत्याचार से तीनों लोक कराह उठे। भगवान् शिव से वरदान-प्राप्त इस भण्डासुर का विनाश करने की शक्ति किसी भी देवता की नहीं थी। अत: नारद

के परामर्श से देवराज इन्द्र ने कुरुक्षेत्र में भगवती आदिशक्ति की प्रसन्नता के लिये यज्ञ किया। यज्ञ से सन्तुष्ट होकर भगवती आदिशक्ति 'कामेश्वरी' के रूप में अग्नि-कुण्ड से प्रकट हुईं। उन्होंने पति के रूप में कामेश्वर शिव का वरण किया। वे भगवती कामेश्वरी ही ललिता हैं, महात्रिपुरसुन्दरी और षोडशी हैं।

ललिता-परिवार

भगवती बाला उनकी आठ वर्षीया सुपुत्री हैं। उनके अधर की स्मित रेखा से भगवान् महागणेश का प्रादुर्भाव हुआ है। भण्डासुर के विरुद्ध युद्ध-अभियान के दूसरे दिन भगवती बाला ने भण्डासुर के तीस (३०) अत्यन्त वीर पुत्रों का वध किया था। (मन्त्रिणी) श्रीश्यामला, श्रीलघुश्यामा, वाग्वादिनी, नकुली वागीश्वरी, अन्नपूर्णा, अश्वारूढा, श्री वाराही (दण्डिनी), लघु वार्तालीअम्बा, स्वप्नवाराही और देवी तिरस्करिणी उनकी परिवारदेवता हैं। इन देवताओं ने भण्डासुर के विरुद्ध युद्ध में भगवती ललिता की सहायता की थी। श्रीनगर और कांची उनके पुराणप्रसिद्ध धाम हैं।

इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया, वामा-ज्येष्ठा एवं रौद्री, परा-पश्यन्ती और वैखरी-स्वरूपिणी तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रात्मिका होने के कारण वे त्रिपुरा हैं। ज्ञानार्णव के अनुसार उनके तीन भेद हैं—१. बाला, २. भैरवी, ३. सुन्दरी। इनमें से बाला विद्या त्रिकूटा त्र्यक्षरी है। भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र में तीन कूट और पन्द्रह अक्षर हैं। उनका यह मन्त्र पञ्चदशाक्षरी के नाम से विख्यात है। इनके षोडशी रूप के मन्त्र में सोलह कूट हैं। भगवती त्रिपुरा के सभी रूप-भेदों के सभी मन्त्रों की निष्पत्ति जिस मेरुमन्त्र से हुई है, उसमें केवल नौ अक्षर हैं।

मन्त्र, यन्त्र और ब्रह्माण्ड

मेरुमन्त्र के जिन नौ वर्णों से त्रिपुरामन्त्रों का आविर्भाव होता है, उन्हीं नौ वर्णों से भगवती त्रिपुरा के विश्वविख्यात अर्चन यन्त्र 'श्रीचक्र' तथा ब्रह्माण्ड का भी प्रवर्तन हुआ है। नौ आवरण वाले इस यन्त्र पर भगवती त्रिपुरा के साथ शताधिक देवताओं का अर्चन होता है। इस तरह मन्त्र-यन्त्र एवं ब्रह्माण्ड की समरूपता स्पष्ट तथा स्वयंसिद्ध है। चूँकि मनुष्य का शरीर विशाल ब्रह्माण्ड की लघु प्रतिकृति है, लघु ब्रह्माण्ड है; अत: श्रीचक्र और मानव-शरीर की समरूपता भी सिद्ध है। इसीलिये उच्च कोटि के साधक अपने शरीर में ही श्रीचक्र की भावना करके भगवती त्रिपुरा का सावरण अर्चन करते हैं। तदनुसार ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दुचक्र की, मस्तक में त्रिकोण की, ललाट में अष्टार की, भ्रूमध्य में अन्तर्दशार की, कण्ठ में बहिर्दशार की, हृदय

में चतुर्दशार की, कुक्षि में वृत्त की, नाभि में अष्टदल कमल की, कटि अर्थात् कमर में अष्टदल कमल के बाहर वाले वृत्त की, स्वाधिष्ठान में षोडश-दल कमल की, मूलाधार में षोडशदल कमल के बाहर वाले तीन वृत्तों की, जानु में भूपुर के प्रथम रेखा की, जंघा में द्वितीय रेखा की तथा पैरों में तृतीय रेखा की भावना करके पूजा की जाती है। 'योगिनीहृदय' में कहा गया है कि जो साधक यह जानता है कि भगवती का अर्चन-यन्त्र पिण्डात्मक और ब्रह्माण्डात्मक है, वह योगीन्द्र है; वह शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान है—

त्रिपुरेशीमहायन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि!
यो जानाति स योगीन्द्रः शम्भुः सः हरिर्विधिः।।

मध्यम कोटि के साधक स्वर्ण आदि धातु के यन्त्र पर निर्मित भूपृष्ठ अथवा स्फटिक आदि से निर्मित सुमेरुपृष्ठ श्रीयन्त्र के बैन्दव चक्र पर अपनी-अपनी गुरु-परम्परा के अनुसार दक्षिणाचार अथवा कुलाचार की विधि से भगवान् कामेश्वर-सहित देवी कामेश्वरी का अर्चन करते हैं। आगमग्रन्थों में भगवती त्रिपुरा के पच्चीस उपासक बताये गये हैं। उपासकभेद से भगवती के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के पच्चीस स्वरूप प्राप्त होते हैं। इन पच्चीस उपासकों में देशिकेन्द्र दुर्वासा का अनन्यतम स्थान है। दुर्वासा-आराधिता विद्या (मन्त्र) की विशेषता यह है कि यह अनुस्वार और विसर्ग से रहित है।

देशिकेन्द्र दुर्वासा

महर्षि दुर्वासा सर्वज्ञात पौराणिक चरित्र हैं। प्रजापिता ब्रह्माजी के मानस पुत्र अत्रि-तनय दुर्वासा को रुद्र का अवतार माना जाता है। तन्त्रागम में क्रोधभट्टारक के विरुद से विख्यात देशिकेन्द्र दुर्वासा को काश्मीरी शैव-दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। वे भगवती ललिता के मन्त्रद्रष्टा उपासक हैं। 'ललितास्तवरत्नम्' तथा 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' उनकी सुप्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं। अपनी इन प्रौढ काव्यकृतियों में उन्होंने त्रैपुर-दर्शन, त्रिपुरार्चन-विधि तथा त्रिपुरामन्त्र के गूढ रहस्यों को स्पष्ट किया है। इलाहाबाद से लगभग ३० किलोमीटर दूर ककरा नामक गाँव में इनका आश्रम स्थित है।

ललितास्तवरत्नम्

'ललितास्तवरत्नम्' आर्या छन्द में निबद्धित देशिकेन्द्र दुर्वासा की अत्यन्त प्रौढ कृति है। दो सौ चौदह (२१४) आर्या छन्दों की इस कृति में भगवती त्रिपुरा के अर्चन यन्त्र (श्रीचक्र) को 'समस्त संसारचक्र से संघटित सुवर्णशैल' कहकर

उसकी संरचना और सुषमा का स्तवन-पूर्वक निरूपण किया गया है। इस सुमेरुरूप सुवर्णशैल के पूर्व-नैर्ऋत्य और वायव्य में क्रमश: ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र के लोक हैं। तीन शिखरों वाले अर्थात् इस त्रिकूट स्वर्णशैल के मध्य में देदीप्यमान रत्नों की राशियाँ हैं। इस सुमेरु के उच्चतम शिखर पर देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित भगवती ललिता का दिव्य और अनुपम नगर है। चार सौ योजन विस्तृत इस नगर के चारो ओर सोपान-क्रम से लोहा, तांबा, कांसा, पीतल, रजत् एवं स्वर्ण.आदि धातुओं तथा वैदूर्य, पुष्पराग, माणिक्य, प्रवाल, मुक्ता आदि रत्नों से निर्मित उत्तुंग प्राकार (परकोटे) हैं। इन प्राकारों के मध्य में अनेक-अनेक योजनों का अन्तराल है। इस अन्तरालभूमि में पुष्पों की वाटिकायें और वापियाँ हैं। इन वाटिकाओं में वैदिक, पौराणिक तथा तान्त्रिक देवताओं एवं अन्य देवयोनियों का वास है। इन सबकी स्थिति और सुषमा का यथाक्रम वर्णन करने के बाद सुधासिन्धु एवं उसके मध्यवर्ती मणिद्वीप में स्थित भगवती के चिन्तामणि गृह का वर्णन किया गया है। इस चिन्तामणि गृह का विस्तार दो योजन है तथा इसकी चहारदीवारी का विस्तार भी दो योजन है। इस चहारदीवारी में चारो दिशाओं में प्रवेशद्वार हैं, जो साधना/ज्ञान के चार आम्नायों के प्रतीक हैं। इसके प्रत्येक द्वार पर लौहित्यसिद्धिसंज्ञक देवीसमूहों का वास है।

चक्रपीठ

इस चिन्तामणिगृह के मध्य में रत्न-निर्मित वेदी पर नौ (९) फलकों वाला सुमेरुपृष्ठ चक्रपीठ है। यही श्रीयन्त्र है। २२ (बाईस) श्लोकों में इस चक्रपीठ के प्रत्येक चक्र के नाम उल्लेख-पूर्वक प्रत्येक चक्र में निवास करने वाली योगिनी-समूह तथा चक्रेश्वरी के पुण्यनाम का स्तवन किया गया है।

इस चक्रपीठ के वैन्दव पीठ पर मणि-खचित पञ्च ब्रह्मकार पर्यङ्क है। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र और ईशान इस पलंग के पाये हैं तथा ऊर्ध्वमुख भगवान् सदाशिव पलंग के फलक (Bed) हैं। पलंग पर आरोहण के लिये रत्न-निर्मित सोपान हैं। इस पलंग के चारो ओर मजबूत रस्सियों से नियन्त्रित मायामयी यवनिका है। ऊपर वितान है, जिसमें धतूरे और नागकेशर के फूलों की मालाओं के झालर हैं। हंस के पंखों का मुलायम गद्दा है। रेशमी पलंगपोश है। मण्डलाकार गाव-तकिये हैं। इस दिव्य पर्यंक पर आसीन चिर-युवा कामेश्वर की गोद में मुदित-माना देवी कामेश्वरी विराजिता हैं। छः श्लोकों में भगवान् कामेश्वर तथा दस श्लोकों में भगवती कामेश्वरी के लोकोत्तर दिव्य सौन्दर्य का वर्णन करने के बाद २८ श्लोकों में उनकी प्रशंसापरक भावभीनी

स्तुति की गई है। इस स्तुति के बाद दस श्लोकों वाला कवचस्तव और अन्त के छः श्लोकों में भगवती की उपासना की फलश्रुति बताई गई है।

इस तरह 'ललितास्तवरत्नम्' अपने किस्म का ऐसा प्रथम काव्यग्रन्थ है जिसमें भगवती कामेश्वरी की ब्रह्माण्डचक्र और श्रीचक्ररूपा लीलाभूमि, उनके धाम श्रीनगर, उनके चिन्तामणिगृह, उनके चक्रपीठ एवं उनके विलासपर्यङ्क की शोभाश्री तथा इन सबमें उनके लीला-सहचर समस्त देवी-देवताओं की स्थिति का निरूपण करते हुए शिव-दम्पत्ति के लोकोत्तर सौन्दर्य की झांकी दिखाकर उनका भाव-प्रवण स्तवन किया गया है। इसमें भक्त कवि की भाव-प्रवणता तथा उसके काव्यकौशल के युगपत् दर्शन होते हैं। आर्या-जैसे ललित छन्द में अर्थगाम्भीर्य तथा अनुप्रास; विशेषकर वृत्तानुप्रास की छटा इसमें देखते ही बनती है। इतने विलक्षण और अद्भुत ग्रन्थ को डॉ. बलजिन्नाथ पण्डित की संस्कृत टीका के साथ श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू द्वारा अपनी शैव दर्शन परियोजना के प्रथम परिस्पन्द के रूप में वर्ष १९८१ में प्रकाशित किया गया था, हिन्दी टीका-सहित इस ग्रन्थ की यह प्रथम प्रस्तुति है।

त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' देशिकेन्द्र दुर्वासा की अत्यन्त प्रौढ़ कृति है। शाक्त-साधकों; विशेषकर ललिता-सम्प्रदाय में इसका वही महत्त्व है, जो शिवभक्तों में पुष्पदन्त-विरचित 'शिवमहिम्नस्तोत्र' का है। संस्कृत के विभिन्न ५६ छन्दों में निबद्ध इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इस आकर-ग्रन्थ में पराम्बा भगवती त्रिपुरा के भावमय स्तवन के साथ ही शक्ति उपासना की वरीयता एवं श्रेष्ठता तथा श्रीविद्या-साधना के सूक्ष्मतर रहस्यों का निरूपण भी किया गया है।

प्रस्तावना के पिछले परिच्छेदों में यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि जिस परमतत्त्व को वैष्णवजन विष्णु, शैवजन शिव और वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, उसी परमतत्त्व का साक्षात्कार शाक्तमत में काली, तारा तथा षोडशी आदि महाविद्याओं के रूप में किया गया है। इस स्तवकाव्य का सम्बन्ध षोडशी महाविद्या से है। त्रिविधात्मक संसार के आविर्भाव तथा तिरोभाव की भूमि भगवती षोडशी ही हैं। अपने लोकोत्तर सौन्दर्य के कारण ये महात्रिपुरसुन्दरी हैं। इच्छा-ज्ञान-क्रिया, परा-पश्यन्ती-वैखरी, वामा-ज्येष्ठा-रौद्री, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र आदि त्रयी-त्रयी की समुच्चय-मूर्ति होने के कारण इन्हें 'त्रिपुरा' भी कहा जाता है। इनकी गणना दश महाविद्याओं के अन्तर्गत तथा दश महाविद्याओं से परे भी जाती है; अतः इन्हें पराविद्या भी कहते

हैं। 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है कि भगवती त्रिपुरा के तीन मूर्तिभेद हैं—१. बाला, २. भैरवी और ३. सुन्दरी।

देशिकेन्द्र दुर्वासा ने इस स्तवकाव्य के प्रथम श्लोक में इन्हीं भगवती त्रिपुरा के सूक्ष्मतर रूप का ध्यान करते हुए बालाविद्या के तीनों कूटों और श्रीविद्या का उद्धार किया है। द्वितीय श्लोक में त्रिलोकजननी भगवती त्रिपुरा की चिन्मयी ज्ञानात्मिका कुण्डलिनी मूर्ति का स्तवन किया गया है। मातृकामयी यही देवी कुण्डलिनी समस्त विद्याओं और मन्त्रों की जननी है, जो मूलाधार चक्र में स्थित बिन्दुरूप स्वयम्भू लिङ्ग को सर्पिणी के समान साढ़े तीन फेरों में घेरकर सोई रहती है। कुण्डलिनी की सुप्तावस्था जीव की अज्ञान अवस्था है। इनको जाग्रत् करना ही साधना का प्रथम लक्ष्य है। शक्ति-उपासना में इनका जागरण मन्त्रशक्ति से होता है। सतत् मन्त्रसाधना से यह कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से जागकर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में शिव से समागम करके अमृतवृष्टि करती है और शिव-सामरस्य से तृप्त और परितुष्ट होकर पुनः मूलाधार में आकर सो जाती है। इसे आरोहक्रम कहते हैं। यही कौलमत है।

तीसरे श्लोक से बारहवें श्लोक-पर्यन्त दस श्लोकों में त्र्यक्षर मन्त्र के कूटों और अक्षरों की महिमा का गान करते हुए उनका स्तवन किया गया है। त्र्यक्षर मन्त्र में तीन बीजाक्षर (अथवा कूट) होते हैं, जिन्हें वाग्भव, कामराज तथा शक्तिबीज (या कूट) कहा जाता है। वाग्भवबीज की साधना से सर्वज्ञता, कामराजबीज की साधना से लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति तथा शक्तिबीज की साधना से अज्ञान की निवृत्ति तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। इन बीजों की साधना के ये विशिष्ट गुण हैं। यथार्थ बात यह है कि किसी भी बीजाक्षर की साधना से ये सभी कार्य सिद्ध होते हैं, जैसा कि तेरहवें श्लोक में प्रतिपादित किया गया है। चौदहवें श्लोक में इन तीनों बीजों तथा पञ्चदशी महाविद्या के कूटत्रय के साधक की शक्ति और सामर्थ्य का निरूपण किया गया है।

पन्द्रहवें श्लोक से २७वें श्लोक-पर्यन्त १३ श्लोकों में भगवती त्रिपुरा की विविधत् उपासना की आवश्यकता और उपासना-विधि के निरूपण के साथ ही त्रिपुरा-उपासना की वरीयता आदि का निरूपण किया गया है। यथा—१७वें श्लोक में कहा गया है कि भगवती की उपासना से स्त्रीप्रसंग भी मोक्षप्रद हो जाता है (स्त्री संगमो मोक्षति) तथा दूषण भी सद्गुण बन जाते हैं (दूषणं सुगुणति)। यह श्लोक

शक्ति-उपासना की वरीयता को रेखांकित करने के साथ ही यह रहस्य भी प्रतिपादित करता है कि शक्ति-उपासना के लिये कुलाचार ही प्रशस्त है; क्योंकि कुलाचार में ही स्त्रीसंगम स्वीकार्य है। यह श्लोक 'कुलार्णवतन्त्र' के इस श्लोक की प्रतिध्वनि है—

भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसार: कुलधर्मे कुलेश्वरि।।

१८वें श्लोक में प्रतिपादित किया गया है कि इस ब्रह्माण्ड में काल एवं लोक आदि त्रितय की जितनी वस्तुयें हैं, उनकी उत्पत्ति भगवती त्रिपुरा के बिन्दुत्रयात्मक कामकलाक्षरा-स्वरूप आत्मा से हुई है। १९वें श्लोक में त्रिपुरा मन्त्र के तीनों कूटों की प्रणवता सिद्ध करने के बाद २०वें श्लोक में बताया गया है कि सभी दर्शनों के अधिदेवता गायत्री आदि श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के ही रूप हैं। २१वें श्लोक में बताया गया है कि अन्नमय आदि पञ्च कोशों के द्वारा भगवती विश्वशरीर में व्याप्त और विलीन हैं। २२वें श्लोक में कहा गया है कि 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से साधक को जो अद्वैत-ज्ञान मिलता है, वही परम ज्ञान सद्गुरु से दीक्षा-प्राप्त साधक को त्रिपुरा-मन्त्र की साधना से मिलता है और इस ज्ञान के फलस्वरूप स्वयं को परब्रह्म-स्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी मानने वाला साधक जीवनमुक्त हो जाता है। मुक्ति-प्राप्ति के लिये कठोर तप तथा यज्ञ आदि कष्टकर साधनों की अपेक्षा त्रिपुरासाधना को सरल और सुखसाध्य निरूपित करके २८वें श्लोक में संसारचक्र और मूल विद्यात्मक श्रीचक्र की एकात्मता को रेखांकित करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि श्रीचक्र के बैन्दव चक्र पर परब्रह्म-स्वरूपिणी भगवती त्रिपुरा का नित्य वास होने के कारण यह श्रीचक्र वेदों के मूल कारण अर्थात् 'ॐ'कार का कोष है।

तीसवें श्लोक से चालीसवें श्लोक-पर्यन्त ग्यारह श्लोकों में भगवती के सौन्दर्य का वर्णन एवं उनके ध्यान का फल बताने के बाद ४१वें से ४५वें श्लोक-पर्यन्त ६ श्लोकों में भगवती के आयुधों की महिमा का वर्णन किया गया है। ४६वें श्लोक में न्यास की अनिवार्यता एवं महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका तथा षोढान्यास-सहित सभी कल्पोक्त न्यास करने से साधक को देवी-स्वरूपता की प्राप्ति होती है।

४७वें से ५६वें श्लोक-पर्यन्त शेष श्लोकों में त्रिपुरा-साधना के ऐहिक एवं पारमार्थिक फलों का निरूपण, क्षमायाचना एवं इस स्तोत्र के पाठ का फल बताया गया है।

आत्म-निवेदन

अब कुछ 'पूर्णिमा' के बारे में। देशिकेन्द्र दुर्वासा के रसपूर्ण तथापि गुरु-गम्भीर स्तवकाव्य 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' की हिन्दी भाषा में यह अद्यतन प्रस्तुति है। देशिकेन्द्र के इस काव्यग्रन्थ पर संस्कृत में नित्यानन्द की टीका है। नित्यानन्दी टीका-सहित यह स्तवकाव्य संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के तन्त्रसंग्रह में प्रकाशित हो चुका है। उसकी नित्यानन्दी टीका का अनुसरण करते हुए गुरुकल्प पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री द्वारा किया गया इसका हिन्दी अनुवाद वर्षों पूर्व पीताम्बरा-पीठ, दतिया (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित हो चुका है। इस क्रम में 'पूर्णिमा' अद्यतन प्रस्तुति है, जो बहुत-कुछ उपर्युक्त टीकाओं पर आधारित है। इसे प्रकाशित कर विद्वज्जनों और त्रिपुरा-साधकों के समक्ष इसे प्रस्तुत करने के लिये मैं चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन तथा उसके स्वत्त्वाधिकारी गुप्तबन्धुओं के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इन कृतियों की प्रस्तुति में सहयोग के लिये मैं जाखचौरा (टिहरी-गढवाल) के विरक्त संत स्वामी शत्रुघ्न दास के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मकर-संक्रान्ति, २०७३ विक्रमी **मधुसूदन प्रसाद शुक्ल**

★

श्रीदुर्वाससा विरचितं

ललितास्तवरत्नम्

'पूर्णिमा' भाषाटीकासहितम्

॥ श्रीः ॥

भगवद्दुर्वासाविरचितं

ललितास्तवरत्नम्

'पूर्णिमा' भाषाटीकासमन्वितम्

वन्दे गजेन्द्रवदनं वामाङ्कारूढवल्लभाश्लिष्टम्।
कुङ्कुमपरागशोणं कुवलयिनीजारकोरकापीडम्॥१॥

मैं सर्वप्रथम वन्दना करता हूँ गजमुख महागणपति की, जिनकी देह-कान्ति कुंकुम के पराग के समान सिन्दूर वर्ण की है तथा जिनका शिरोप्रदेश द्वितीया के चन्द्र की कलगी से शोभित है और जिनके वामाङ्क में उनकी वल्लभा आलिंगन-मुद्रा में बैठी हुई है॥१॥

विमर्श—कुवलयिनी अर्थात् कुमुदिनी। कवि-प्रसिद्धि है कि चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल जाती है, अतः उसे कुमुदिनी का जार (प्रियतम) कहा जाता है। 'कोरक' अर्थात् बन्द कली। ऐसी कली, जिसका मुँह भी नहीं खुला है। अतः 'कुवलयिनीजारकोरक' का अर्थ हुआ—बन्द कली के समान चन्द्रमा अर्थात् शुक्ल पक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा।

स जयति सुवर्णशैलः सकलजगच्चक्रसंघटितमूर्त्तिः।
काञ्चननिकुञ्जवाटीकन्दलदमरीप्रपञ्चसंगीतः ॥२॥

उस सुवर्णशैल की सदा जय हो, जिसका कलेवर समस्त संसारचक्र से संघटित है और जिसके सुनहरे कुञ्जों में भ्रमर-समूह का गुञ्जन-संगीत अनवरत रूप से चलता रहता है॥२॥

विमर्श—सुवर्णशैल अर्थात् सुमेरु पर्वत। यहाँ आशय 'श्रीचक्र' से है। भगवती श्रीविद्या के समस्त मन्त्रों का उद्भव जिस सुमेरु-मंत्र (ल, स, ह, ई, ए, र, क, अनुस्वार और बिन्दु) से हुआ है, उसी सुमेरु मन्त्र से श्रीचक्र का भी आविर्भाव हुआ है, जैसा कि श्रीज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है—'श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यार्णवसम्भवम्' तथा 'श्रीचक्रमपि देवेशि! मेरुरूपं न संशयः।' इस तरह मेरु और श्रीचक्र में साम्य है। चूंकि 'श्रीचक्र' ब्रह्माण्ड के उद्भव और क्रमशः विकास का प्रतीक है, इसीलिये उसे यहाँ 'सकलजगत् चक्रसंघटितमूर्तिः' कहा गया है।

दमरी—एक विशेष प्रकार का भ्रमरसमूह।

हरिहयनैर्ऋतमारुतहरितामन्तेष्ववस्थितं तस्य।
विनुमः सानुत्रितयं विधिहरिगौरीशविष्टपाधारम्।।३।।

इसके अर्थात् सुमेरुरूप स्वर्ण-शैल के पूर्व, नैर्ऋत्य तथा वायव्य में क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र के लोक स्थित हैं। इन तीनों लोकों के आधारभूत इस सुवर्ण-शैल को मैं प्रणाम करता हूँ।।३।।

मध्ये पुनर्मनोहररत्नरुचिस्तवकरञ्जितदिगन्तम्।
उपरि चतुश्शतयोजनमुत्तुङ्गं शृङ्गपुङ्गवमुपासे।।४।।

इस सुवर्ण-शैल की तीन चोटियाँ (शिखर) हैं। इन तीनों चोटियों के मध्य में विभिन्न प्रकार के दिव्य रत्नों की अनेक राशियाँ (ढेर) हैं। इन दिव्य रत्नों की प्रकाश-किरणों से दिशायें जगमगा रही हैं। इसकी सबसे ऊँची वाली चोटी का विस्तार चार सौ योजन है। मैं उस शिखर का ध्यान करता हूँ।।४।।

तत्र चतुश्शतयोजनपरिणाहं देवशिल्पिना रचितम्।
नानासालमनोज्ञं नमाम्यहं नगरमादिविद्यायाः।।५।।

मैं भगवती श्री आदि-विद्या के उस दिव्य और अनुपम नगर की वन्दना करता हूँ, जो देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा सुमेरु के उच्चतम शिखर पर बनाया गया है और जिसका विस्तार चार सौ योजन है और जो चारों ओर से नयनाभिराम प्राचीरों से घिरा हुआ है।।५।।

प्रथमं सहस्रपूर्वकषट्शतसंख्याकयोजनं परितः।
वलयीकृतस्वगात्रं वरणं शरणं व्रजाम्ययोरूपम्।।६।।

मैं इन प्राकारों में प्रथम प्राकार की वन्दना करता हूँ, जो लोहे से निर्मित है, वर्तुलाकार है और जिसका आयाम सोलह सौ योजन का है।।६।।

तस्योत्तरे समीरणयोजनदूरे तरङ्गितच्छायः।
घटयतु मुदं द्वितीयो घण्टास्तनसारनिर्मितः सालः।।७।।

इस लौह-प्राकार से ४९ योजन दूर दूसरा प्राकार है, जो कांसे का बना है तथा जिसकी सौन्दर्यछटा चारो ओर लहरों के समान फैल रही है। यह प्राकार हमारे चित्त में आनन्द की वर्षा करे।।७।।

उभयोरन्तरसीमन्युद्दामभ्रमररञ्जितोदारम्।
उपवनमुपास्महे वयमूरीकृतमन्दमारुतस्यन्दम्।।८।।

इन दोनों प्राकारों के मध्य में नयनाभिराम उपवन है, जिसमें सदैव ही सुगन्धित और सुशीतल हवा बहती रहती है तथा भौरों का गुञ्जन होता रहता है॥८॥

आलिङ्ग्य भद्रकालीमासीनस्तत्र हरिशिलाश्यामाम्।
मनसि महाकालो मे विहरतु मधुपानविभ्रमन्नेत्रः॥९॥

इस उपवन में नीलम के समान नीलाभ देवी भद्रकाली से आलिंगित भगवान् महाकाल शिव का वास है। भगवान् महाकाल के नेत्र मधुपान के कारण चञ्चल हैं। वे भगवान् महाकाल सदैव मेरे मनमन्दिर में विहार करें॥९॥

तार्तीयीको वरणस्तस्योत्तरसीम्नि वातयोजनतः।
ताम्रेण रचितमूर्तिस्तनुतामाचन्द्रतारकं भद्रम्॥१०॥

इस उपवन की उत्तरी सीमा में उनचास योजन दूर तांबे का बना हुआ तीसरा प्राकार है। जिस प्रकार ताम्र वर्ण का सूर्य पृथ्वी से चन्द्रमा और तारामण्डल-पर्यन्त दिग्दिगन्त को आलोकित करता है, उसी प्रकार का यह ताम्र-निर्मित प्राकार तीनों लोकों का कल्याण करे॥१०॥

मध्ये तयोश्च मणिमयपल्लवशाखाप्रसूनपक्ष्मलिताम्।
कल्पानोकहवाटीं कलये मकरन्दपङ्किलावालाम्॥११॥

पूर्ववर्णित उपवन और तृतीय प्राकार के मध्य में मणिमय पल्लवों, शाखाओं, पुष्पों और पुष्पदलरूपी पलकों से युक्त कल्पवृक्षों से परिपूर्ण एक अन्य उपवन है। इन कल्पवृक्षों की जड़ों के आस-पास जो आलवाल हैं, वे उन वृक्षों से झरे परागकणों से पंकिल हो गये हैं। मैं मन ही मन इनका स्मरण करता हूँ॥११॥

तत्र मधुमाधवश्रीतरुणीभ्यां तरलदृक्चकोराभ्याम्।
आलिङ्गितोऽवतान्मामनिशं प्रथमर्तुरात्तपुष्पास्त्रः॥१२॥

मधु (चैत्र) तथा माधव (वैशाख) की शोभाश्रीरूपिणी तरुणियों, जिनके नेत्र चकोर के समान चपल और चञ्चल हैं, द्वारा आलिङ्गित प्रथम ऋतु अर्थात् पुष्पधन्वा वसन्त हमारी रक्षा करे॥१२॥

नमत तदुत्तरभागे नाकिपथोल्लङ्घिशृङ्गसंघातम्।
सीसाकृतिं तुरीयं सितकिरणालोकनिर्मलं सालम्॥१३॥

'नाक' अर्थात् स्वर्ग, 'नाकी' अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले देवता। उन देवताओं का मार्ग अर्थात् आकाश। आदि विद्या के नगर का चतुर्थ प्राकार सीसे का बना हुआ है, जो अपनी ऊँचाई से आकाश के भी पार चला गया है। इस प्राकार से प्रकाश की धवल किरणें फूटती हैं। मैं इस प्राकार का नमन करता हूँ॥१३॥

सालद्वयान्तराले सरलालिकपोतचाटुसुभगायाम्।
सन्तानवाटिकायां सक्तं चेतोऽस्तु सततमस्माकम्।।१४।।

तीसरे और चौथे प्राकार के मध्य में पारिजात वृक्षों की वाटिका है। इसमें कतारबद्ध पारिजात वृक्ष लगे हैं। इन पारिजात-वृक्षों पर कपोत आदि पक्षी रहते हैं। यह उपवन इन कबूतरों की गुटर-गूं की ध्वनि से सदैव निनादित रहता है। यह वाटिका हमारी रक्षा करे।।१४।।

तत्र तपनातिरूक्षः सम्राज्ञीचरणसान्द्रितस्वान्तः।
शुक्रशुचिश्रीसहितो ग्रीष्मर्तुर्दिशतु कीर्तिमाकल्पम्।।१५।।

सूर्य के द्वारा सन्तप्त होने के कारण बाह्य रूप से अत्यन्त शुष्क तथापि भगवती ललिता के भक्ति-रस (आनन्द) से परिपूर्ण चरणकमलों का आश्रय पाने के कारण अत्यन्त स्निग्ध चित्त ग्रीष्म (ऋतु) अपनी शुक्र और शुचि नामक श्रीसम्पन्न प्रिया के साथ इस उपवन में विहार करता है। वह ग्रीष्म ऋतु हमें कीर्ति प्रदान करे।।१५।।

उत्तरसीमनि तस्योन्नतशिखरोत्कम्पिहाटकपताकः।
प्रकटयतु पञ्चमो नः प्राकारः कुशलमारकूटमयः।।१६।।

इस उपवन की उत्तरी सीमा पर पीतल का पाँचवाँ प्राकार है। इस प्राकार की समुन्नत चोटियों पर स्वर्णमयी पताकायें लगी हैं, जो हवा के झकोरों से लहराती रहती हैं। यह प्राकार सभी प्रकार से हमारा मंगल करे।।१६।।

प्राकारयोश्च मध्ये पल्लवितान्यभृतपञ्चमोन्मेषा।
हरिचन्दनद्रुवाटी हरतादामूलमस्मदनुतापम्।।१७।।

इन दोनों अर्थात् चौथे और पाँचवें प्राकार के मध्य में कोयलों की कूक से सदा निनादित हरिचन्दन के वृक्षों की वाटिका है, वह सदैव हमारा कल्याण करे।।१७।।

तत्र नभः श्रीमुख्यैस्तरुणीवर्गैः समन्वितः परितः।
वज्राटहासमुखरो वाञ्छापूर्तिं तनोतु वर्षर्तुः।।१८।।

इस संतान-वाटिका में श्रावण और भाद्रपद की शोभाश्री की प्रमुखता वाले युवति-समूहों से चारो ओर से घिरी रहने वाली वर्षा ऋतु का वास है। यह वर्षा ऋतु बिजलियों की चमक और गड़गड़ाहट से इस उपवन में अपनी उपस्थिति को अभिव्यक्त करती है। सबका कल्याण करने वाली यह वर्षा ऋतु हमारी भी सभी मनोकामनाओं को पूरा करे।।१८।।

मारुतयोजनदूरे महनीयस्तस्य चोत्तरे भागे।
भद्रं कृषीष्ट षष्ठः प्राकारः पञ्चलोहधातुमयः॥१९॥

पञ्चम प्राकार से ४९ योजन दूर उत्तर दिशा में छठवाँ प्राकार है। सोना, चाँदी, तांबा, सीसा और लोहे से निर्मित यह प्राकार वन्दनीय है। पञ्चधातु-निर्मित यह प्राकार हम सबका कल्याण करे॥१९॥

अनयोर्मध्ये सन्ततमङ्कूरद्दिव्यकुसुमगन्धायाम्।
मन्दारवाटिकायां मानसमङ्गीकरोतु मे विहृतिम्॥२०॥

पाँचवें और छठे प्राकारों के मध्य में नित्य अंकुरित पुष्पों के भार से लदे हुए मन्दार-वृक्षों की वाटिका है। मन्दार-पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध से सुवासित यह वाटिका सदैव मेरे हृदय में बनी रहे॥२०॥

तस्यामिषोर्जलक्ष्मीतरुणीभ्यां शरदृतुः सदा सहितः।
अभ्यर्चयन् स जीयादम्बामामोदमेदुरैः कुसुमैः॥२१॥

इस मन्दारवाटिका में आश्विन (इष) और कार्तिक (ऊर्ज)-रूपिणी ऐश्वर्य-शालिनी तरुणियों से संयुक्त शरद् ऋतु का वास है। इस उपवन के सुवासित तथा परागरस से स्निग्ध पुष्पों से भगवती ललिताम्बा का नित्य अर्चन करने वाले शरद की जय हो॥२१।

तस्यर्षिसंख्ययोजनदूरे देदीप्यमानशृङ्गौघः।
कलधौतकलितमूर्तिः कल्याणं दिशतु सप्तमः सालः॥२२॥

इस शरद् वाटिका से सात योजन दूर सातवाँ प्राकार है, जो रजत से निर्मित है। इसकी चोटियाँ अत्यन्त धवल और चमकदार हैं। यह हमारा कल्याण करे॥२२॥

मध्ये तयोर्मरुत्पथलङ्घितविटपाग्रविरुतकलकण्ठा।
श्रीपारिजातवाटी श्रियमनिशं दिशतु शीतलोद्देशा॥२३॥

छठे और सातवें प्राकारों के मध्य में स्थित वाटिका में पारिजात के गगन-चुम्बी वृक्ष हैं, जो वायु-पथ में भी अवरोध उत्पन्न करते हैं। इन सघन वृक्षों के कारण वाटिका में सदैव शीतलता रहती है। इन वृक्षों पर मधुर कलरव करने वाले कोयल आदि पक्षियों का बसेरा है, जो अपने मधुर कलरव से वाटिका को सदैव निनादित रखते हैं। यह वाटिका हमें ऐश्वर्य प्रदान करे॥२३॥

तस्यामतिप्रियाभ्यां सह खेलन् सहसहस्यलक्ष्मीभ्याम्।
सामन्तो झषकेतोर्हेमन्तो भवतु हेमवृद्ध्यै नः॥२४॥

उस उपवन में मार्गशीर्ष (सह) तथा पौष (सहस्य)-रूपिणी अपनी प्रियाओं के साथ क्रीड़ा करने वाला मकरकेतन कामदेव का सखा या सामन्त हेमन्त हमें समृद्धि प्रदान करे॥२४॥

विमर्श—झष अर्थात् मछली। चूंकि कामदेव के ध्वज में मछलियों के चित्र अंकित हैं, अत: उसे मीनकेतन कहा जाता है।

उत्तरतस्तस्य महानुद्भटहुतभुक्शिखारुणमयूखः।
तपनीयखण्डरचितस्तनुतादायुष्यमष्टमो वरणः॥ २५॥

हेमन्त-भवन के उत्तर में स्वर्ण-खण्डों से निर्मित आठवाँ प्राकार है; जो प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखा के समान अरुण किरणों से देदीप्यमान है। वह हमारी आयु का विस्तार करे अर्थात् हमें दीर्घजीवी बनाये।२५॥

कादम्बविपिनवाटीमनयोर्मध्यभुवि कल्पितावासाम्।
कलयामि सूनकोरककन्दलितामोदतुन्दिलसमीराम्॥ २६॥

सातवें और आठवें प्राकार के मध्यवर्ती क्षेत्र में कदम्बवाटिका है, जो कदम्ब के खिले और अधखिले फूलों के सौरभ का आगार है। मैं मन ही मन इस वाटिका का स्मरण करता हूँ॥२६॥

तस्यामतिशिशिराकृतिरासीनस्तपतपस्यलक्ष्मीभ्याम्।
शिवमनिशं कुरुतान्मे शिशिरर्तुः सततशीतलदिगन्तः॥ २६॥

इस कदम्बवाटिका में तप (माघ) और तपस्य (फाल्गुन) की शोभाश्री के साथ अत्यन्त शीतल प्रकृति के शिशिर ऋतु का आवास है, जो दिग्-दिगन्त तक शीत का प्रसार करता है॥२७॥

तस्यां कदम्बवाट्यां तत्प्रसवामोदमिलितमधुगन्धम्।
सप्तावरणमनोज्ञं शरणं समुपैमि मन्त्रिणीशरणम्॥ २८॥

इस कदम्बवाटिका में देवी मन्त्रिणी का आवास-भवन है, जो पूर्वोक्त सातों आवरणों में स्थित वाटिकाओं से उत्पन्न सुवास से आवृत्त है तथा जिसमें कदम्ब-वन की सुरभि समाई हुई है। मैं देवी मन्त्रिणी के दिव्य भवन का शरण ग्रहण करता हूँ॥२८॥

तत्रालये विशाले तपनीयारचिततरलसोपाने।
माणिक्यमण्डपान्तर्महिते सिंहासने सुमणिखचिते॥ २९॥

उस विशाल भवन में रक्त मणियों से निर्मित मण्डप के मध्य में स्वर्णिम

देदीप्यमान सीढ़ियों के ऊपर अनेकानेक अनमोल रत्नों से खचित सिंहासन पर विराजिता सङ्गीतमातृकारूपिणी आद्या शक्ति की मैं वन्दना करता हूँ॥२९॥

बिन्दुत्रिपञ्चकोणद्विपनृपवसुवेददलकुरेखाढ्ये ।
चक्रे सदा निविष्टां षष्ट्यष्टत्रिंदक्षरेशानीम्॥ ३०॥

इस सिंहासन पर मण्डल बना हुआ है। यह मण्डल बिन्दु, त्रिकोण, पञ्चकोण, अष्टदल, षोडशदल, पुनः अष्टदल, चतुर्दल तथा भूपुर से युक्त है और इस पर साठ और अडतीस अक्षरों के मन्त्र अंकित हैं। मैं इस मण्डल पर प्रतिष्ठिता उपर्युक्त मन्त्रात्मक बीजाक्षरों की स्वामिनी संगीतमातृका देवी की वन्दना करता हूँ॥३०॥

तापिच्छमेचकाभां तालीदलघटितकर्णताटङ्काम्।
ताम्बूलपूरितमुखीं ताम्राधरबिम्बदृष्टदरहःसाम्॥ ३१॥

अगले श्लोकों में भगवती सङ्गीतमातृका के शोभा-शृंगार का निरूपण किया गया है। देवी सङ्गीतमातृका की देह-कान्ति तमालवृक्ष के समान हरित-श्यामल है। उनके कानों में तमालपत्रों से निर्मित ताटंक नामक कर्णभूषण है। उनका मुख ताम्बूल (पान) से भरा हुआ है। रक्तिम अधरोष्ठों पर स्मित रेखा नाच रही है अर्थात् वे प्रसन्नमुखी हैं॥३१॥

कुंकुमपङ्किलदेहां कुवलयजीवातुशावकावतंसाम्।
कोकनदशोणचरणां कोकिलनिक्वाणकोमलालापाम्॥ ३२॥

उनके शरीर पर कुंकुम का लेप लगा हुआ है। कुमुदिनी को प्राण देने वाले चन्द्रमा का उनके सिर पर अवतंस है। उनके चरण लाल कमल के समान लाल रंग के हैं। उनकी कण्ठ-ध्वनि (आवाज) कोयल की कूक की तरह मीठी हैं॥३२॥

वामाङ्गगलितचूलीं वनमाल्यकदम्बमालिकाभरणाम्।
मुक्तालन्तिकाञ्चितमुग्धालिकमिलितचित्रकोदाराम्॥ ३३॥

उनके वक्षःस्थल पर लाल रंग की चोली है। कदम्बपुष्पों की वनमाला घुटनों तक झूल रही है। ललाट पर तिलक है, जिससे भाल-प्रदेश की शोभाश्री में वृद्धि हो रही है॥३३॥ (पाठ-भेद-वामांस ललित)

विमर्श—इस श्लोक की पहली पंक्ति का पाठ—'वामाङ्गगलितचूलीं' मानने से इसका अर्थ होगा—जिनकी चोली बाँयें कन्धों से कुछ खिसक गई है।

वनमाला—घुटनों तक लम्बी माला को 'वनमाला' कहते हैं।

करविधृतकीरशावककलनिनदव्यक्तनिखिलनिगमार्थाम्।
वामकुचसङ्गिवीणावादनसौख्यार्धमीलिताक्षियुगाम्।। ३४।।

उनके हाथ पर तोते का बच्चा बैठा हुआ है। उसका उच्चारण अत्यन्त शुद्ध है तथा वह स्पष्ट शब्दों में वेद-और आगम की व्याख्या कर रहा है। उनकी गोद में वीणा है। वीणा का ऊर्ध्वभाग उनके वाम स्तन पर टिका हुआ है। वे वीणा-वादन कर रही हैं। वीणा-वादन में विभोर-जन्य तन्मयता के कारण उनके नेत्र अर्धोन्मीलित अर्थात् अधखुले हैं।।३४।।

आपाटलांशुकधरामादिरसोन्मेषवासितकटाक्षाम्।
आम्नायसारगुलिकामाद्यां सङ्गीतमातृकां वन्दे।। ३५।।

इस चक्र पर विराजिता संगीत-मातृकारूपिणी आद्या शक्ति की वन्दना करता हूँ, जिनके वस्त्र-परिधान ताजे लाल गुलाब की तरह उज्ज्वल रक्त वर्ण के हैं तथा जिनकी चितवन हृदय में प्रेमरस का संचार करने वाली है। वे समस्त आम्नायों के गहनतम ज्ञान की मञ्जूषा हैं।।३५।।

विमर्श—'आदिरसोन्मेषवासितकटाक्षाम्'—काव्यशास्त्र में नौ प्रकार के रस माने गये हैं। इनमें प्रमुख रस है—शृंगार रस। काम के अंकुरण को शृंगार कहते हैं। काम का अर्थ है—प्रेम और अनुराग। कटाक्ष अर्थात् चितवन। जिनके कटाक्ष से साधक के हृदय में प्रेम के भाव जागृत होते हैं और वह हृदय की समस्त कलुषताओं से मुक्त होकर शुद्ध प्रेमभाव में डूबकर संसार के भवसागर से पार उतर जाता है।

आम्नायसार—आगम और निगम अर्थात् सभी शास्त्रों का सार। गुलिका अर्थात् ताबीज़।

तस्य च सुवर्णसालस्योत्तरतस्तरुणकुङ्कुमच्छायः।
शमयतु मम सन्तापं सालो नवमः स पुष्परागमयः।। ३६।।

भगवती मन्त्रिणी के भवन के उत्तर में पुखराज से निर्मित नवम (नवाँ) प्राकार है, जिसकी कान्ति कुंकुम के समान है। यह प्राकार हमारे संतापों का शमन करे।।३६।।

अनयोरन्तरवसुधाः प्रणुमः प्रत्यग्रपुष्परागमयीः।
सिंहासनेश्वरीमनुचिन्तननिस्तन्द्रसिद्धनीरन्ध्राः　　।।३७।।

इन दोनों प्राकारों के मध्य में जो भूमि है, वह खदानों से अभी-अभी निकाले गये पुखराजों से निर्मित है। सिंहासनेश्वरी देवी के मन्त्र-जप में सतत तत्पर सिद्ध-गण इस पवित्र भूमि में निवास करते हैं। इस पुण्यभूमि को हमारा प्रणाम।।३७।।

तत्सालोत्तरदेशे तरुणजपाकिरणधोरणीशोणः।
प्रशमयतु पद्मरागप्राकारो मम पराभवं दशमः॥३८॥

इस नवम प्राकार के उत्तर में दशम प्राकार है, जो सद्य: विकसित जपा-पुष्पों की कान्ति-प्रसार के समान लाल वर्ण के पद्मराग मणियों से निर्मित है। यह प्राकार हमारे पराभव का शमन करे॥३८॥

विमर्श—पराभव का अर्थ है—पराजय। 'मम पराभवं'—मेरी अर्थात् आत्मा का पराभव। आत्मा का पराभव है—अपने नित्य शुद्ध बुद्ध स्वरूप से च्युत होकर आणव आदि मलत्रय से युक्त अविद्या से आवद्ध होकर 'जीव' दशा की प्राप्ति।

अन्तरभूकृतवासानयोरपनीतचित्तवैमत्यान् ।
चक्रेशीपदभक्ताँश्चारणवर्गानहर्निशं कलये॥३९॥

इन दोनों प्राकारों की मध्यवर्ती भूमि में चक्रेशी देवी के शुद्ध चित्त-सम्पन्न 'चारण'-संज्ञक साधक निवास करते हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ॥३९॥

विमर्श—'चारण'—उपदेवता कोटि की एक योनि।

सारंगवाहयोजनदूरेऽसंघटितकेतनस्तस्य ।
गोमेदकेन रचितो गोपायतु मां समुन्नतः सालः॥४०॥

दसवें प्राकार से उत्तर दिशा में ४९ योजन दूर गोमेद-नामक रत्नों से बना ग्यारहवाँ प्राकार है। उसके शिखरों पर बड़ी-बड़ी पताकायें निर्बाध रूप से फहराती रहती हैं। यह अत्यन्त उच्च प्राकार सदैव हमारी रक्षा करे॥४०॥

विमर्श—संस्कृत में 'सारङ्ग' के अनेक पर्याय हैं, जिनमें से एक पर्याय या अर्थ है—मृग या हिरण। मृग या हिरण को उनकी तीव्र गति के कारण 'वायु' का वाहन माना जाता है। अत: 'सारङ्गवाह' का अर्थ है—वायु या पवन। पवन की संख्या ४९ मानी जाती है। अत: सारङ्गवाहयोजन का अर्थ है—४९ योजन।

वप्रद्वयान्तरोर्व्यां वटुकैर्विविधैश्च योगिनीवृन्दैः।
सततं समर्चितायाः सङ्कर्षण्याः प्रणौमि चरणाब्जम्॥४१॥

दोनों प्राकारों की मध्यवर्ती भूमि में देवी सङ्कर्षिणी का वास है। योगिनियों और वटुकवर्गीय विभिन्न भैरवों के द्वारा देवी संकर्षिणी की पूजा की जाती है। मैं देवी संकर्षिणी के चरण-कमलों को प्रणाम करता हूँ॥४१॥

तापसयोजनदूरे तस्य समुत्तुङ्गगोपुरोपेतः।
वाञ्छापूर्त्यै भजताद्वज्रमणीनिकरनिर्मितो वप्रः॥४२॥

इस ग्यारहवें प्राकार से सात योजन दूर हीरक-मणियों से रचित द्वादश (बारहवाँ) प्राकार है, जिसमें अत्यन्त उच्च नगरद्वार (प्रवेशद्वार) है। यह प्राकार हम सबकी कामनायें पूरी करे॥४२॥

विमर्श—तापस = तपस्वी अर्थात् ऋषि। ऋषियों की संख्या सात है; अत: 'तापसयोजनदूर' का अर्थ है—सात योजन दूर।

वरणद्वितयान्तरतो वासजुषो विहितमधुरसास्वादाः।
रम्भादिविबुधवेश्या रचयन्तु महान्तमस्मदानन्दम्॥४३॥

दोनों प्राकारों के मध्यवर्ती क्षेत्र में रम्भा आदि अप्सरायें रहती हैं, जिन्होंने मैरेय (मद्य) का स्वाद चखा है। ये अप्सरायें हमारे आनन्द में अभिवृद्धि करें॥४३॥

तत्र सदा प्रवहन्ती तटिनी वज्राभिधा चिरं जीयात्।
चटुलोर्मिजालनृत्यत्कलहंसीकुलकलक्वणितपुष्टा॥४४॥

दोनों प्राकारों (ग्यारहवें और बारहवें) के मध्य में कलकल ध्वनि करती हुई 'वज्रा' नामक नदी बहती है। इस नदी में मधुरकण्ठी कलहंसनियाँ क्रीडा करती हैं और उनके मधुर कलरव से आस-पास का क्षेत्र सदैव गूंजता रहता है। इसकी सदा जयकार होती रहे अर्थात् इसकी महिमा बनी रहे॥४४॥

रोधसि तस्या रुचिरे वज्रेशी जयति वज्रभूषाढ्या।
वज्रप्रदानतोषितवज्रिमुखत्रिदशविनुतचारित्रा ॥४५॥

इस 'वज्रा' नदी के तट पर ही 'वज्रेशी' (वज्रेश्वरी) देवी का धाम है। देवी वज्रेशी सदैव वज्र अर्थात् हीरों के आभूषण धारण करती हैं। 'वज्र' नामक दिव्य अस्त्र प्रदान किये जाने के कारण इन्द्र आदि देवता उनसे उपकृत हैं तथा वे देवता सदैव उनकी स्तुति का गान करते हैं। इतनी महिमाशालिनी देवी वज्रेशी की जय हो, सदा जय हो॥४५॥

तस्योदीच्यां हरिति स्तवकितसुषमावलीढवियदन्तः।
वैडूर्यरत्नरचितो वैमल्यं दिशतु चेतसो वरणः॥४६॥

देवी वज्रेशी के धाम से कुछ दूरी पर ही वैदूर्य मणियों से निर्मित (तेरहवाँ) प्राकार है, जिसकी सौन्दर्य-सुषमा आकाश तक व्याप्त है। यह प्राकार हमारे चित्त को निर्मलता प्रदान करे अर्थात् हमारे मनोकालुष्य को समाप्त करे॥४६॥

अधिमध्यमेतयोः पुनरम्बाचरणावलम्बितस्वान्तान्।
कर्कोटकादिनागान् कलयामः किञ्च बलिमुखान् दनुजान्॥४७॥

बारहवें और तेरहवें प्राकार के मध्य में जो पुण्यक्षेत्र है, उसमें कर्कोटक आदि कुलनागों और बलि आदि दनुज-प्रमुखों का वास है। कर्कोटक आदि नाग और बलि आदि दनुज सदैव भगवती ललिता के चरण-कमलों का ध्यान करते हैं। मैं इन नागों आदि का हृदय में ध्यान करता हूँ।।४७।।

गन्धवहसंख्ययोजनदूरे गगनोर्ध्वजाङ्घिकस्तस्य।
वासवमणिप्रणीतो वरणो बहलयतु वैदुषीं विशदाम्।।४८।।

वैदूर्य मणियों से निर्मित तेरहवें प्राकार से ४९ योजन की दूरी पर इन्द्रनील मणियों से निर्मित चौदहवाँ प्राकार है। इसका ऊर्ध्व भाग आकाश (अन्तरिक्ष) से भी अधिक ऊँचा है। यह हमारी निर्मल विद्वत्ता की अभिवृद्धि करे।।४८।।

मध्यक्षोण्यामनयोर्महेन्द्रनीलात्मकानि च सरांसि।
शातोदरीसहायान् भूपालानपि पुनः पुनः प्रणुमः।।४९।।

इन दोनों प्राकारों के मध्य में महेन्द्रनीलमणिमय सरोवर है। महेन्द्रनील-मणिमय का अर्थ यह है कि उन सरोवरों के तट और घाट आदि महेन्द्र नीलमणियों से बने हैं। इन सरोवरों के तटों पर मान्धाता आदि प्राचीन षोडश चक्रवर्ती सम्राट् अपनी क्षीण कटि वाली पत्नियों के साथ निवास करते हैं।।४९।।

विमर्श—ये सोलह चक्रवर्ती सम्राट् हैं—मान्धाता, अम्बरीश, शशबिन्दु, अङ्क, पृथु, अमरत्वान, स्वरत, स्वाहार्द्र, वायु, दिलीप, गिरि, रन्तिदेव, ययाति, आत्मभू, रघु और भगीरथ।

आनन्देश्वर आदि भैरवों को भी राष्ट्राधिप कहा जाता है। भैरव-पक्ष में 'शातोदरी-सहायान्' का अभिप्राय योगिनीगण होगा।

आशुगयोजनदूरे तस्योर्ध्वं कान्तिधवलितदिगन्तः।
मुक्ताविरचितगात्रो मुहुरस्माकं मुदे भवतु सालः।।५०।।

इस चौदहवें प्राकार से ४९ योजन की दूरी पर उससे ऊपर अर्थात् उत्तर की दिशा में शुभ्र, धवल और अपनी ही कान्ति से जगमगाते हुए मोतियों से निर्मित (पन्द्रहवाँ) साल (प्राकार) है। इसकी कान्ति दिग्-दिगन्त तक व्याप्त है। यह प्राकार हमें प्रसन्नता और हर्ष प्रदान करे।।५०।।

आवृत्त्योरधिमध्यं पूर्वस्यां दिशि पुरन्दरः श्रीमान्।
अभ्रमुविटाधिरूढो विभ्रममस्माकमनिशमातनुतात्।।५१।।

इन दोनों अर्थात् चौदहवें और पन्द्रहवें प्राकार के मध्य-क्षेत्र में 'अभ्रमु' नामक

दिग्-हस्तिनी के प्रेमी ऐरावत नामक दिग्गज पर आरूढ़ देवराज (पुरन्दर) इन्द्र का निवास है। देवराज इन्द्र हमें प्रतिदिन भोगसामग्रियाँ प्रदान करें॥५१॥

विमर्श—'भोगसामग्रियों' से यहाँ आशय उन सांसारिक सामग्रियों से है, जो परितुष्ट जीवन-यापन के लिये अनिवार्य हैं और जो मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग में बाधक नहीं हैं।

तत्कोणे व्यजनस्रुक्तोमरपात्रस्रुवान्नशक्तिधरः।
स्वाहास्वधासमेतः सुखयतु मां हव्यवाहनः सुचिरम्॥५२॥

इस भूभाग के अग्निकोण (दक्षिण-पूर्व कोण) में अग्निदेव का वास है। उनके हाथों में व्यजन (पंखा) स्रुक्, तोमर (अस्त्रविशेष), आहुति-(घृत) पात्र, स्रुवा, तिल-तण्डुल आदि हवनीय अन्न का पात्र, शक्ति (अस्त्रविशेष) सुशोभित हैं। स्वाहा और स्वधा नामक उनकी शक्तियाँ उनके साथ हैं। अग्निदेव हमें दीर्घकाल तक सुख प्रदान करें॥५२॥

दक्षिणदिगन्तराले दण्डधरो नीलनीरदच्छायः।
त्रिपुरापदाब्जभक्तस्तिरयतु मम निखिलमंहसां निकरम्॥५३॥

इसी भूभाग की दक्षिण दिशा में भगवती त्रिपुरा के भक्त यमराज विराजमान हैं। उनके हाथ में दण्ड है तथा उनकी देहकान्ति नीले बादल के समान है। वे हमारे समस्त पाप-समूहों का नाश करें॥५३॥

तस्यैव पश्चिमायां दिशि दलितेन्दीवरप्रभाश्यामः।
खेटासियष्टिधारी खेदानपनयतु यातुधानो मे॥५४॥

इसके पश्चिम में अर्थात् दक्षिण-पश्चिम में विकसित नीलकमल की सी देह-कान्ति वाले राक्षसराज निर्ऋति, जिनके हाथ खड्ग (असि यष्टि) तथा कवच (खेट) से लसित हैं, हमारे सन्तापों का समूल नाश करें॥५४॥

तस्या उत्तरदेशे धवलाङ्गो विपुलझषवरारूढः।
पाशायुधात्तपाणिः पाशी विदलयतु पाशजालानि॥५५॥

नैर्ऋत्य कोण से उत्तर की ओर अर्थात् पश्चिम दिशा में मकर पर आरूढ़ पाशधारी वरुणदेव विराजित हैं। वे हमारे सम्पूर्ण पाप-समूहों का समूल उच्छेद करें॥५५॥

वन्दे तदुत्तरहित्कोणे वायुं चमूरुवरवाहम्।
कोरकिततत्त्वबोधान् गोरक्षप्रमुखयोगिनोऽपि मुहुः॥५६॥

इस वरुणस्थान के वाम भाग में अर्थात् वायव्य कोण में प्रतिष्ठित मृग वाहन वाले वायु तथा तत्त्वज्ञाननिष्ठ गोरक्षनाथ योगियों की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ॥५६॥

विमर्श—आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार भगवान् गोरखनाथ का आविर्भाव विक्रम संवत् की दसवीं (१०वीं) शताब्दी में हुआ था। (दृष्टव्य-नाथ-सम्प्रदाय पृष्ठ ९५)। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्तोत्र के रचयिता महर्षि दुवासा का आविर्भाव गुरु गोरखनाथ के बाद हुआ और यह अभी कुछ सौ साल पहले की रचना है। वस्तुत: ऐसी बात नहीं है। गुरु गोरखनाथ आदि जैसे दिव्य एवं चिरजीवी योगियों की दिव्य लोक में सदा स्थिति रहती है। सत्-युग में उत्पन्न महर्षि दुर्वासा ने दिव्य लोक-निवासी गुरु गोरखनाथ की अभिवन्दना की है। उनका पूर्वापरत्व आधुनिक इतिहास का विषय नहीं है।

तरुणीरिडाप्रधानास्तिस्रो वातस्य तस्य कृतवासा:।
प्रत्यग्रकापिशायनपानपरिभ्रान्तलोचना: कलये॥५७॥

इस वायव्य कोण में निवास करने वाले वायु-देव की इडा आदि उन तीनों शक्तियों का मैं ध्यान करता हूँ, जिनके नेत्र मद्यपान के कारण चपल और चञ्चल हैं॥५७॥

विमर्श—इडा-पिंगला और सुषुम्णा मेरु-दण्ड में स्थित तीन नाड़ियाँ हैं। इन्हीं के द्वारा श्वास-नि:श्वास की क्रिया सम्पन्न होती है। देवी कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँचकर वहाँ से जो अमृतवर्षा कराती हैं, उसका पान ये तीनों नाडियाँ भी करती हैं। यहाँ उसी का उल्लेख और निरूपण है।

तल्लोकपूर्वभागे धनदं ध्यायामि शेवधिकुलेशम्।
अपि माणिभद्रमुख्यानम्बाचरणावलम्बिनो यक्षान्॥५८॥

वायव्य कोण में स्थित वायु-लोक के पूर्व में अर्थात् उत्तर दिशा में भगवती त्रिपुरा के भक्त एवं आराधक यक्षराज कुबेर का वास है। इस यक्ष-लोक में निवास करने वाले मणिभद्र आदि प्रमुख यक्षों सहित यक्षराज कुबेर का मैं ध्यान करता हूँ॥५८॥

तस्यैव पूर्वसीमनि तपनीयारचितगोपुरे नगरे।
कात्यायनीसहायं कलये शीतांशुखण्डचूडालम्॥५९॥

उत्तर दिशावर्ती इस कुबेर लोक से पूर्वी सीमान्त पर अर्थात् ईशान-कोण में ईशान-संज्ञक भगवान् ईशान का पुण्य धाम है, जिसमें वे चन्द्रशेखर शिव भगवती

कात्यायनी के साथ रहते हैं। यह नगर स्वर्ण-निर्मित है। मैं इन भगवान् शिव का ध्यान करता हूँ॥५९॥

तत्पुरषोडशवरणस्थलभाजस्तरुणचन्द्रचूडालान्।
रुद्राध्याये पठितान् रुद्राणीसहचरान् भजे रुद्रान्॥६०॥

इस ईशान नगर से परे जो सोलहवाँ प्राकार है, उसमें रुद्राणी सहचर उन चन्द्रकलाधारी रुद्रगणों का वास है, जिनकी स्तुति यजुर्वेद के रुद्राध्याय में की गयी है। मैं सदैव इन रुद्रगणों की वन्दना करता हूँ॥६०॥

पवमानसंख्ययोजनदूरे बालतृणमेचकस्तस्य।
सालो मरकतरचितः सम्पदमचलां श्रियं च पुष्णातु॥६१॥

इस ईशान-नगरी अर्थात् सोलहवें प्राकार से उनचास योजन की दूरी पर सत्रहवाँ प्राकार है, जो घास की नवीन कोपलों के समान चमकीले हरे रंग की मरकत (पन्ना) मणियों से निर्मित है। यह प्राकार हमारी 'अचला-श्री' को फलवती करे॥६१॥

विमर्श—'अचला श्री' अर्थात् परापर सिद्धिरूपी सम्पदा को हमें भोग और मोक्ष प्रदान करने में और समर्थ बनाये।

आवृतियुग्मान्तरतो हरितमणीनिवहमेचके देशे।
हाटकतालीविपिनं हालाघटघटितविटपमाकलये॥६२॥

इन दोनों अर्थात् सोलहवें और सत्रहवें प्राकारों के मध्य की भूमि मरकत (पन्ना) मणि के समान हरित (हरा) वर्ण की है, जिसमें स्वर्णमय तमाल (ताड) वृक्षों की वाटिका है। इनमें से प्रत्येक वृक्ष से 'ताडी' नामक मादक द्रव का निरंतर रिसाव होता रहता है। अतः इस द्रव के संग्रहण के लिये प्रत्येक वृक्ष पर हंडी (छोटा घट) लटका दिया जाता है॥६२॥

विमर्श—'ताडी' अर्थात् ताडवृक्ष का प्राकृतिक रस। ताड के वृक्ष में एक छोटा छेद करके बाँस की पोली नली के जरिये मिट्टी की हंडी में इसका संग्रहण किया जाता है। सूर्योदय तक इसमें मादकता नहीं होती। सूर्य की किरणें पड़ने पर इसमें 'किणवय' (Formantion) की क्रिया होने लगती है और दिन चढ़ने के साथ इसमें मादकता बढ़ती जाती है। दोपहर ढलते-ढलते यह रस मादक मदिरा बन जाता है।

तत्रैव मन्त्रिणीगृहपरिणाहं तरलकेतनं सदनम्।
मरकतसौधमनोज्ञं दद्यादायूंषि दण्डनाथायाः॥६३॥

इस तमाल वन में देवी दण्डनाथा का महल है। मरकत मणियों से निर्मित यह महल देवी मन्त्रिणी के राजप्रासाद के समान आकार-प्रकार का तथा उतना ही अलंकृत है। इसके शिखरों पर विशाल पताका हवा के झकोरों से फरफराती रहती है। यह दिव्य प्रासाद हमें दीर्घायु प्रदान करे॥६३॥

सदने तत्र हरिन्मणिसंघटिते मण्डपे शतस्तम्भे।
कार्त्तस्वरमयपीठे कनकमयाम्बुरुहकर्णिकामध्ये॥६४॥

इन पाँच श्लोकों में दण्डनाथा देवी वार्तालीं का वर्णन किया गया है। देवी दण्डनाथा के भवन में मरकत मणियों से निर्मित सौ स्तम्भों वाले मण्डप में स्वर्ण-रचित पीठ पर स्वर्ण से बने हुए कमल की कर्णिका में एक चक्र बना हुआ है॥६४॥

बिन्दुत्रिकोणवर्तुलषडस्रवृत्तद्वयान्विते चक्रे।
सञ्चारिणी दशोत्तरशतार्णमनुराजकमलकलहंसी॥६५॥

इस श्लोक में उपर्युक्त चक्र का स्वरूप बताया गया है। इस चक्र के मध्य में बिन्दु है, जो त्रिकोण से घिरा हुआ है। त्रिकोण पर वृत्त, षट्कोण तथा दो वृत्तों (अथवा वृत्त के पश्चात् दो षट्पत्रों) से युक्त चक्र-मण्डल पर एक सौ दस अक्षरों के मन्त्रराज के वर्ण-कमलों के मध्य कमल-वन में विहार करने वाली कलहंसिनी के समान मन्त्ररूपिणी देवी वार्ताली विराजिता हैं॥६५॥

कोलवदना कुशेशयनयना कोकारिमण्डितशिखण्डा।
सन्तप्तकाञ्चनाभा संध्यारुणचेलसंवृतनितम्बा॥६६॥

देवी वार्ताली का मुख वराह के मुख के समान है। तपाये हुए स्वर्ण के समान उनकी देहकान्ति है। नेत्र खिले हुए कमल के समान हैं और उनकी केशराशि चन्द्र-कला से सुशोभित है। सायंकालीन अरुणिमा के समान उनके अरुण वस्त्र हैं॥६६॥

हलमुसलशङ्खचक्राङ्कुशपाशाभयवरस्फुरितहस्ता।
कूलङ्कषानुकम्पा कुङ्कुमजम्बालितस्तनाभोगा॥६७॥

भगवती वार्ताली अष्टभुजा हैं। उनके हाथ हल, मूसल, शंख, चक्र, अंकुश, पाश—इन आयुधों तथा अभय एवं वर मुद्राओं से लसित हैं। स्तन-मण्डल पर कुंकुम का लेप है। अपने भक्तों के प्रति उनकी करुणा अपने तटों को भी तोड़ देने वाली वेगवती नदी की तरह प्रवाहित होती रहती है॥६७॥

धूर्त्तानामतिदूरावार्ताशेषावलग्नकमनीया।
आर्त्तालीशुभदात्री वार्ताली भवतु वाञ्छितार्थाय॥६८॥

उनकी कटि (कमर) इतनी क्षीण है कि उसका मात्र अनुमान लगाया जा सकता है। वे सरलचित्ता हैं, अत: धूर्तों और पाखंड़ियों को अपने पास फटकने तक नहीं देतीं। इतनी दयावती हैं कि अपने भक्तों को जीवन-काल में भोग ही नहीं, मोक्ष भी प्रदान कर देती हैं। ऐसी देवी वार्ताली मुझे भी मेरा अभीष्ट प्रदान करने की कृपा करें।

तस्या: परिता देवी: स्वप्नेश्युन्मत्तभैरवीमुख्या:।
प्रणमत जम्भिन्याद्या भैरववर्गांश्च हेतुकप्रमुखान्।। ६९।।

भगवती वार्ताली के चारो ओर अपनी-अपनी भैरवियों-सहित हेतुक आदि भैरव तथा अपने-अपने भैरवों के साथ स्वप्नेशी, उन्मत्तभैरवी तथा जम्भिनी आदि योगिनियाँ प्रतिष्ठिता हैं, जो सभी साधकों द्वारा अभिवन्दनीया हैं।।६९।।

विमर्श—इन पाँच श्लोकों में राजराजेश्वरी भगवती ललिता की दण्डनाथा देवी वार्ताली का परिचयात्मक विवरण दिया गया है। देवी वार्ताली का मुख वराह के समान है। तप्त कांचन के समान उनकी शरीरकान्ति है। उनके वस्त्र अरुण (लाल) वर्ण के हैं। वे अष्टभुजा हैं। हल, मूसल, शंख, चक्र, अंकुश और पाश उनके आयुध हैं। शेष दो हाथों में अभय और वरमुद्रा है। उनका पूजन-यन्त्र बिन्दु, त्रिकोण, वृत्त तथा षट्पत्रद्वय और भूपुरयुक्त है। हेतुक आदि भैरव तथा स्वप्नेशी आदि योगिनियाँ उनकी परिवारदेवता हैं।

पूर्वोक्तसंख्ययोजनदूरे पूयांशुपाटलस्तस्य।
विद्रावयतु मदार्तिं विद्रुमसालो विशङ्कटद्वार:।।७०।।

देवी वार्ताली के धाम से पूर्वोक्त संख्या अर्थात् उनचास (४९) योजन दूर चमकदार लाल रंग के मूँगों से निर्मित प्राकार है, जो विशाल गोपुर से युक्त है। यह मेरी समस्त पीडाओं का निवारण करे।।७०।।

विमर्श—उपर्युक्त ७वें श्लोक से ६१वें श्लोक तक प्रयुक्त शब्द—समीरण, वात, मारुत, सारङ्गवाह, गन्धवह, आशुभ तथा पवमान का अर्थ है—'मरुत्'। मरुतों की संख्या ४९ है।

आवरणयोरहर्निशमन्तरभूमौ प्रकाशशालिन्याम्।
आसीनमम्बुजासनमभिनवसिन्दूरगौरमहमीडे।।७१।।

उपर्युक्त सत्रहवें और अठारहवें प्राकारों के मध्य में अपनी ही द्युति से देदीप्यमान भूमि में सद्य: निर्मित सिन्दूर के समान अरुण वर्ण के कमल के आसन पर आसीन ब्रह्माजी को मैं प्रणाम करके उनका स्तवन करता हूँ।।७१।।

वरणस्य तस्य मारुतयोजनतो विपुलगोपुरद्वारः।
सालो नानारत्नैः संघटिताङ्गः कृषीष्ट मदभीष्टम्।।७२।।

इस विद्रुम (मूंगा) प्राकार से ४९ योजन की दूरी पर विभिन्न प्रकार की मणियों से संघटित गोपुराख्य प्राकार है, जो हमारे अभीष्टों को पूरा करने की कृपा करे।।७२।।

अन्तरकक्ष्यामनयोरविरलशोभापिचण्डिलोद्देशाम्।
माणिक्यमण्डपाख्यां महतीमधिहृदयमनिशमाकलये।।७३।।

इन दोनों अर्थात् १८वें और १९वें प्राकारों के मध्य में सुविशाल 'माणिक्य-मण्डप' है, जो अत्यन्त शोभा-सम्पन्न है। मैं हर समय इस 'माणिक्य मण्डप' का हृदय से ध्यान करता हूँ।।७३।।

तत्र स्थितं प्रसन्नं तरुणतमालप्रवालकिरणाभम्।
कर्णावलम्बिकुण्डलकन्दलिताभीशुकवचितकपोलम्।।७४।।

इस माणिक्य मण्डप में भगवान् मुकुन्द विराजित हैं। वे प्रसन्नवदन हैं। तमाल के ताजे पत्तों के समान कान्ति वाला उनका कपोल-मण्डल कानों में धारण किये गये कुण्डलों से निकलने वाली किरणों से रह-रहकर दमक उठता है।।७४।।

शोणाधरं शुचिस्मितमेणाङ्कवदनमेधमानकृपम्।
मुग्धैणमदविशेषकमुद्रितनिटिलेन्दुरेखिकारुचिरम्।।७५।।

उनके अधर लाल रंग के हैं, जिन पर स्मित रेखा खेल रही है अर्थात् वे मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं। उनका मुख-मण्डल चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा कृपापूर्ण है। ललाट प्रदेश पर दोनों भौंहों से कुछ ऊपर कस्तूरी का तिलक है, जिसकी आकृति द्वितीया के चन्द्रमा के समान है।।७५।।

नालीकदलसहोदरनयनाञ्चलघटितमनसिजाकूतम् ।
कमलाकठिनपयोधरकस्तूरीघुसृणपङ्किलोरस्कम्।।७६।।

उनके कमलनेत्र मनोज-धर्मी हैं अर्थात् जिस तरह कामदेव के प्रभाव से रमणियों के चित्त में कामभाव उत्पन्न होता है, उसी तरह सांवले सलोने मुकुन्द के कटाक्ष से सबके हृदय में रति-भाव जागृत होता है। चन्दन-चर्चिता देवी कमला का आलिङ्गन करने के कारण भगवान् मुकुन्द का वक्ष:प्रदेश भी चन्दन से आर्द्र रहता है। मैं ऐसे भगवान् मुकुन्द की शरण ग्रहण करता हूँ।।७६।।

विमर्श—'नालीकदल'—नालीक अर्थात् कमल, नालीकदल अर्थात् कमल-

दल। सहोदर अर्थात् सदृश। भगवान् मुकुन्द के दोनों नेत्र कमल-दलों के समान सुन्दर हैं।

चाम्पेयगन्धिकैश्यं शम्पासब्रह्मचारिकौशेयम्।
श्रीवत्सकौस्तुभधरं श्रितजनरक्षाधुरीणचरणाब्जम्।। ७७।।

उनकी केशराशि चम्पक के फूलों के समान सुवासित है। उनके सभी वस्त्र विद्युत्-लता के समान चमकीले हैं। श्रीवत्स-लांछित उनके वक्ष:प्रदेश पर कौस्तुभ मणि सुशोभित है। उनके चरण-कमल अपने भक्तों की रक्षा के लिये सदा तत्पर रहते हैं।।७७।।

कम्बुसुदर्शनविलसत्करपद्मं कण्ठलोलवनमालम्।
मुचुकुन्दमोक्षफलदं मुकुन्दमानन्दकन्दमवलम्बे।। ७८।।

उनके दो हाथों में शंख (कम्बु) और सुदर्शन चक्र है। गले में वनमाला है। जिन्होंने मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द को मोक्ष प्रदान किया है, मैं उन मुकुन्दरूपी भगवान् नारायण की शरण में जाता हूँ।।७८।।

विमर्श—'श्रीवत्स'—भगवान् विष्णु की छाती पर घूंघर के समान बालों की जो आकृति बनी हुई है, उसे 'श्रीवत्स' कहते हैं।

वनमाला—घुटनों तक लम्बी माला को वनमाला कहते हैं।

मुकुन्द—मुकुं मोक्षं ददाति य: स: मुकुन्द: अर्थात् जो अपने भक्तों को सहज रूप से मोक्ष प्रदान करता है, वह मुकुन्द है। अपनी भक्तवत्सलता के कारण भगवान् विष्णु 'मुकुन्द' के विरुद से विख्यात हैं।

मुचुकुन्द—मुचुकुन्द की कथा श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध में आती है। देवासुर संग्राम की थकावट को मिटाने के लिये प्रगाढ़ निद्रा में लीन मुचुकुन्द को अपना पीताम्बर ओढ़ाकर भगवान् कृष्ण ने उसकी नेत्रज्वाला से दुर्जेय कालयवन का वध कराया था। तत्पश्चात् अपनी कृपादृष्टि से मान्धातापुत्र राजर्षि मुचुकुन्द को मोक्ष प्रदान किया था। इस श्लोक में इसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

तद्वरणोत्तरभागे तारापतिबिम्बचुम्बिनिजशृङ्गः।
विविधमणीगणघटितो वितरतु सालो विनिर्मलां धिषणाम्।। ७९।।

इस उन्नीसवें प्राकार की उत्तर दिशा में बीसवाँ प्राकार है, जो विविध प्रकार की मणियों से घटित है और जिसके ऊँचे शिखर चन्द्रमण्डल का स्पर्श करते हैं। मणि-खचित यह प्राकार हमें अपनी बेदाग मणियों के समान निर्मल बुद्धि प्रदान करे।।७९।।

प्राकारद्वितयान्तरकक्ष्यां पृथुरत्ननिकरसङ्कीर्णाम्।
नमत सहस्रस्तम्भकमण्डपनाम्नातिविश्रुतां भुवने।।८०।।

उपर्युक्त दोनों प्राकारों के मध्य में सहस्र-स्तम्भ मण्डप नामक मण्डप है, जिसमें तरह-तरह के मणि और रत्न जड़े हुए हैं। इस मण्डप की विशालता और सुन्दरता की ख्याति तीनों लोकों में व्याप्त है।।८०।।

प्रमुखस्तत्र भवानीसहचरमीशानमिन्दुखण्डधरम्।
शृङ्गारनायिकामनुशीलनभाजोऽपि भृङ्गिनन्दिमुखान्।।८१।।

इस सहस्रस्तम्भक मण्डप में भवानी-सहित चन्द्रशेखर भगवान् ईशान तथा उनकी सेवा में तत्पर शृंगारनायिकाओं एवं भृङ्गी-नन्दी आदि शिवगणों का वास है। मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ।।८१।।

तस्यैणवाहयोजनदूरे वन्दे मनोमयं वप्रम्।
अङ्कुरन्मणिकिरणामन्तरकक्ष्यां च निर्मलामनयोः।।८२।।

इस सहस्रस्तम्भक मण्डप से ४९ योजन दूर मनोमय प्राकार है। मैं उसकी वन्दना करता हूँ। दोनों प्राकारों के मध्य में मणियों के समान देदीप्यमान जो भूमि है, मैं उसकी भी वन्दना करता हूँ।।८२।।

तत्रैवामृतवापीं तरलतरङ्गावलीढतटयुग्माम्।
मुक्तामयकलहंसीमुद्रितकनकारविन्दसन्दोहाम्।।८३।।

इसी कक्ष्या (भूमि) में अमृत-वापी है, जिसकी चञ्चल लहरें अपने तटों को अपने आलिंगन-पाश में बाँध लेने के प्रयास में निरंतर उनका (तटों का) स्पर्श करती रहती हैं। इस अमृत-वापी में कलहंसिनियाँ कल्लोल करती हैं। वे इतनी धवलावर्णा हैं, मानो वे मोतियों से बनाई गई हैं। अमृत-वापी की जल-राशि में किल्लोल करती हुई ये कलहंसिनियाँ इस प्रकार प्रतीत होती हैं, मानों उन्हें वापी के स्वर्ण-कमलसमूह के मध्य में जड़ दिया गया हो।।८३।।

शक्रोपलमयभृङ्गीसङ्गीतोन्मेषघोषितदिगन्ताम् ।
काञ्चनमयाङ्गविलसत्कारण्डवषण्डताण्डवमनोज्ञाम्।।८४।।

सुनहरे रंगत के कारण्डव नामक पक्षियों के समूह के समूह अपने उद्धत और चपल नृत्य से इस वापी की मनोज्ञता में अभिवृद्धि करते हैं तो इन्द्रनील मणिमयी अर्थात् नीलम की-सी गहरे नीले रंग वाली भ्रमरियों के गुञ्जन से इस वापी का दिग्-दिगन्त सदैव निनादित रहता है।।८४।।

कुरुविन्दात्मकहल्लककोरकसुषमासमूहपाटलिताम्।
कलये सुधास्वरूपां कन्दलितामन्दकैरवामोदाम्।। ८५ ।।

कोरण्ड (लाल) नामक मणियों से निर्मित प्रतीत होने वाले रक्त कल्हार (लाल-कमल) वृन्द से नि:सृत किरणों के कारण जिसकी छवि गुलाबी प्रतीत होती है और जो श्वेत-कमलों की गन्ध से महमहा रही है, मैं मन ही मन उस अमृतवापी का स्मरण करता हूँ।।८५।।

तद्वापिकान्तराले तरले मणिपोतसीम्नि विहरन्तीम्।
सिन्दूरपाटलाङ्गीं सितकिरणाङ्कूरकल्पितावतंसाम्।। ८६ ।।

इन तीन श्लोकों में प्रणाम-पूर्वक तारा देवी का वर्णन किया गया है। इस अमृत-वापी के मध्य में लहर-समूह के आघात से चञ्चलित मणिनिर्मित जल-यान (नौका) के अग्र भाग पर (विराजिता होकर) विहार करती हुई तारादेवी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी देहकान्ति सिन्दूर के समान पाटलवर्णी (गुलाबी) है तथा जिन्होंने शिरोभूषण के रूप में चन्द्रकला को धारण कर रखा है।।८६।।

पर्वेन्दुबिम्बवदनां पल्लवशोणाधरस्फुरितहासाम्।
कुटिलकबरीं कुरङ्गीशिशुनयनां कुण्डलस्फुरितगण्डाम्।।८७।।

देवी तारा का मुख-मण्डल पूर्णिमा के चन्द्रबिम्ब के समान गोल है; पल्लव के समान अधर हैं, जिन पर स्मित की रेखा खेल रही है, केश घुंघराले हैं, मृग-शावक के समान नेत्र हैं तथा कुण्डलों के हिलने से उनके कपोल देदीप्यमान हो उठते हैं।।८७।।

निकटस्थपोतनिलयाः शक्तीः शयविधृतहेमशृङ्गजलैः।
परिषिञ्चन्तीं परितस्तारां तारुण्यगर्वितां वन्दे।।८८।।

भगवती तारा के विशाल जलयान के समीप ही एक अन्य जलयान (पोत) है, जिसमें अन्य देवियाँ बैठी हुई हैं। उनके हाथों में सोने की बनी पिचकारी (शृंग) है, जिससे वे यौवन-गर्विता भगवती तारा के इर्द-गिर्द जल-सिंचन करती हैं। इन देवियों सहित मैं भगवती तारा को प्रणाम करता हूँ।।८८।।

प्रागुक्तसंख्ययोजनदूरे प्रणमामि बुद्धिमयसालम्।
अनयोरन्तरकक्ष्यामष्टापदपुष्टमेदिनीं रुचिराम्।।८९।।

मनोमय साल (प्राकार) से उनचास योजन की दूरी पर बुद्धिमय साल है। दोनों प्राकारों की मध्यवर्ती भूमि (कक्ष्या) में आठ पैरों वाले शरभ का वास है। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।८९।।

विमर्श—प्रागुक्त संख्या अर्थात् ४९।

कादम्बरीनिधानां कलयाम्यानन्दवापिकां तस्याम्।
शोणाश्मनिवहनिर्मितसोपानश्रेणिशोभमानतटीम्।। ९० ।।

दोनों प्राकारों की मध्य-भूमि में कदम्बपुष्पों से बनी हुई सुरा की आश्रयभूता आनन्दवापिका है। इस वापिका में चारो ओर माणिक्य रत्नों से बनी हुई सीढ़ियाँ हैं, जिनसे इसके तटों की शोभा देखते ही बनती है। मैं इस वापिका का ध्यान करता हूँ।।८९।।

माणिक्यतरणिनिलयां मध्ये तस्या मदारुणकपोलाम्।
अमृतेशीत्यभिधानामन्तः कलयामि वारुणीं देवीम्।। ९१ ।।

इस वापी में माणिक्य-निर्मित जलयान (नौका) पर निवास करने वाली मदिरा की अधिष्ठात्री अमृतेशी नामक वारुणी देवी का ध्यान करता हूँ, जिनका कपोल-मण्डल मद के कारण अरुण वर्ण का है।।९१।।

विमर्श—'वारुणी' मदिरा को कहते हैं। पश्चिम के लोकपाल वरुणदेव से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

सौवर्णकेनिपातनहस्ताः सौन्दर्यगर्विता देव्यः।
तत्पुरतः स्थितिभाजो वितरन्त्वस्माकमायुषो वृद्धिम्।। ९२ ।।

उस जलयान में देवी वारुणी के सामने की ओर सौन्दर्यगर्विता देवियाँ बैठी हुई हैं। उनके हाथों में जलयान के संचालन के लिये सोने की पतवारें (केनिपातन) हैं। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वे सब हमारी आयु-वृद्धि करें।।९२।।

तस्य पृषदश्वयोजनदूरेऽहङ्कारसालमतितुङ्गम्।
वन्दे तयोश्च मध्ये कक्ष्यां वलमानमलयपवमानाम्।। ९३ ।।

इस बुद्धिमय साल (प्राकार) से ४९ योजन की दूरी पर अहङ्कारमय प्राकार है। इन दोनों प्राकारों के मध्यवर्ती क्षेत्र में मलय-समीर बहता रहता है। मैं इन्हें प्रणाम करता हूँ।।९३।।

विमर्श—'पृषदश्व' अर्थात् पवन-मरुत्, जिनकी संख्या ४९ है।

विनुमो विमर्शवापीं सौषुम्नसुधास्वरूपिणीं तत्र।
वेलातिलङ्घिवीचीकोलाहलभरितकूलवनवाटीम्।। ९४ ।।

इस कक्ष्या में विमर्शवापी है, जो सुषुम्णा की सुधा-धारा से परिपूर्ण है। इस वापी की लहरें अहर्निश इसके तटों से टकराती रहती हैं और इन उत्ताल तरंगों के कलकल निनाद से इसके तटवर्ती वन गूंजते रहते हैं।।९४।।

विमर्श—देवी कुण्डलिनी के सहस्रार में पहुँचने पर चन्द्रमण्डल से जो अमृत-वर्षा होती है, उसका अमृत सुषुम्णापथ से ही सभी चक्रों तथा चक्रों में स्थित देवताओं तक पहुँचता है। चूंकि इस अमृत-प्रवाह का माध्यम सुषुम्णा है, अत: इसे सुषुम्णा का अमृत कहा गया है, जैसे पानी तो बांध का होता है; लेकिन जब वह नहर से बहता है तो उसे नहर का पानी कहा जाता है।

तत्रैव सलिलमध्ये तापिच्छदलप्रपञ्चसुषमाभाम्।
श्यामलकञ्चुकलसितां श्यामाविटबिम्बडम्बरहरास्याम्।।९५।।

इन तीन श्लोकों में कुरुकुल्ला देवी का वर्णन किया गया है। इस विमर्श-वापी में अर्थात् विमर्शमय जल में मैं कुरुकुल्ला देवी का ध्यान करता हूँ। देवी कुरुकुल्ला की देहकान्ति तमाल-पत्रसमूह के समान सघन श्यामल है। उनकी कञ्चुकी (चोली) का वर्ण भी श्यामल है। उनके मुख-मण्डल की शोभा रजनीपति चन्द्रमा के सौन्दर्य-गर्व को भी परास्त करती है।।९५।।

आभुग्नमसृणचिल्लीहसितायुग्मशरकार्मुकविलासाम्।
मन्दस्मिताञ्चितमुखीं मणिमयताटङ्कमण्डितकपोलाम्।। ९६ ।।

उनकी भौंहों की वक्रता के सामने कामदेव के धनुष की वक्रता भी हेय है। अधरों पर स्मित की रेखा है। कानों में ताटंक (बड़ी-बड़ी बालियाँ) हैं। इन बालियों से निकलने वाली प्रकाश-किरणों से उनका कपोल-मण्डल सदैव दमकता रहता है।।९६।।

कुरुविन्दतरणिनिलयां कुलाचलस्पर्धिकुचनमन्मध्याम्।
कुङ्कुमविलिप्तगात्रीं कुरुकुल्लां मनसि कुर्महे सततम्।। ९७ ।।

वे इस विमर्श-वापी में कुरुविन्द रत्नों (लाल) से निर्मित नौका पर विराजिता हैं। उनके स्तन-मण्डल सुघडता और ऊँचाई में महेन्द्रादि कुल-पर्वतों से स्पर्धा करते हैं। इस स्तन-भार के कारण वे सामने की ओर कुछ झुकी-सी प्रतीत होती हैं। उनके श्यामल शरीर पर कुंकुम का लेप है। मैं इतनी सौन्दर्यशालिनी देवी कुरुकुल्ला का ध्यान करता हूँ।।९७।।

तत्सालोत्तरभागे भानुमयं वप्रमाश्रये दीप्रम्।
मध्यं च विपुलमनयोर्मन्ये विश्रान्तमातपोद्गारम्।। ९८ ।।

अहंकार(मय) प्राकार के उत्तर में भानुमय साल (प्राकार) है, जो यथा नाम सूर्य के समान भास्वर और देदीप्यमान है। इन दोनों प्राकारों के मध्य में अत्यन्त

विस्तृत कक्ष्या है, जो अत्यन्त विश्रान्तिप्रद और समस्त संतापों से त्राण दिलाने वाला है। मैं उसका नमन करता हूँ॥९८॥

तत्र कुरुविन्दपीठे तामरसे कनककर्णिकाघटिते।
आसीनमरुणवाससमम्लानप्रसवमालिकाभरणम्॥९९॥

इस भूस्थल में कुरुविन्द (लाल) रत्नों से निर्मित सिंहासन है। इस सिंहासन पर स्वर्णिम कर्णिका से युक्त रक्तकमल है। इस रक्तकमल पर मार्तण्डभैरव विराजित हैं। उनका वस्त्र लाल रंग का है और उन्होंने जो माला (पुष्पहार) पहन रखी है, वह कभी म्लान नहीं होती अर्थात् कभी कुम्हलाती नहीं है। मैं ऐसे मार्तण्ड-भैरव का ध्यान करता हूँ॥९९॥

चक्षुष्मतीप्रकाशनशक्तिच्छायासमारचितकेलिम्।
माणिक्यमुकुटरम्यं मन्ये मार्तण्डभैरवं हृदये॥१००॥

नेत्रों में देखने की क्षमता उत्पन्न करने वाली प्रकाशन शक्तिस्वरूपा 'उषा' तथा छाया शक्तिरूपा 'छाया'-संज्ञक अपनी दो शक्तियों के साथ नित्य क्रीड़ा करने वाले श्री मार्तण्ड-भैरव का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ, जिनके शीर्ष प्रदेश में मणियों से निर्मित मुकुट है॥१००॥

विमर्श—चक्षुष्मती शक्ति अर्थात् नेत्रों में निहित देखने की शक्ति—चाक्षुषी शक्ति। यह चाक्षुषी शक्ति भगवान् मार्त्तण्ड की उस प्रकाशशक्ति का अवदान है, जिसका हमारे समष्टि जीवन में नित्यप्रति 'उषा' के रूप में उदय तथा छायाकारिणी संध्या के रूप में अवसान होता है। इस तरह 'चक्षुष्मती प्रकाशन शक्ति' से अभिप्राय 'उषा' से सिद्ध होता है।

इन्दुमयसालमीडे तस्योत्तरतस्तुषारगिरिगौरम्।
अत्यन्तशिशिरमारुतमनयोर्मध्यं च चन्द्रिकोद्गारम्॥१०१॥

सूर्यमय प्राकार के उत्तर की ओर हिमालय के समान धवल वर्ण का चन्द्रंमय प्राकार है। मैं इसकी स्तुति करता हूँ। इन दोनों अर्थात् सूर्यमय और चन्द्रमय प्राकारों के मध्य में जो क्षेत्र है, वहाँ कौमुदी पुष्पों को उद्गारित कर देने वाला अत्यन्त शीतल पवन बहता रहता है॥१०१॥

तत्र प्रकाशमानं तारानिकरैः परिष्कृतोद्देशम्।
अमृतमयकान्तिकन्दलमन्तः कलयामि कुन्दसितमिन्दुम्॥१०२॥

तारासमूहों से अलंकृत इस मध्यवर्ती क्षेत्र को तथा वहाँ अपनी अमृतमयी

किरणों से प्रकाशित कुन्दपुष्प के समान धवलवर्णी चन्द्रमा का ध्यान करता हूँ।।१०२।।

शृंगारसालमीडे शृङ्गोल्लसितं तदुत्तरे भागे।
मध्यस्थले तयोरपि महितां शृङ्गारपूर्विकां परिखाम्।। १०३।।

इस चन्द्रमय साल से उत्तर की ओर अत्यन्त उच्च शिखरों वाला शृंगार-साल है। शृंगारसाल और शृंगारसाल के मध्य में शृंगार रस से भरी हुई शृंगार-वापी है।।१०३।।

तत्र मणिनौस्थिताभिस्तपनीयाविरचिताग्रहस्ताभिः[1]।
शृङ्गारदेवताभिः सहितं परिखाधिपं भजे मदनम्।। १०४।।

इस परिखा में मणि-जटित नौकायें हैं। इन नौकाओं पर शृंगार रस की देवियाँ बैठी हुई हैं। उनके हाथों और अंगुलियों में स्वर्ण-निर्मित आभूषण हैं। (पाठान्तर के अनुसार इन देवियों के हाथों में पतवारों की स्वर्णजटित मूठ हैं।) मैं इन देवियों के साथ इस शृंगारपरिवार के अधिपति कामदेव की वन्दना करता हूँ।।१०४।।

शृङ्गारवरणवप्रस्योत्तरतः सकलविबुधसंसेव्यम्।
चिन्तामणिगणरचितं चिन्तां दूरीकरोतु मे सदनम्।। १०५।।

शृंगार-प्राकार से उत्तर की ओर चिन्तामणि नामक रत्नों से निर्मित भवन है। सभी देवताओं के द्वारा वन्दनीय यह चिन्तामणि भवन मेरे हृदय की समस्त चिन्ताओं को समाप्त करे।।१०५।।

मणिसदनसालयोरधिमध्यं दशतालभूमिरुहदीर्घैः।
पर्णैः सुवर्णवर्णैर्युक्तां काण्डैश्च योजनोत्तुङ्गैः।। १०६।।

इन साढ़े तीन श्लोकों में पद्माटवी का वर्णन किया गया है। शृंगारसाल (वप्र) और चिन्मामणि-भवन के मध्य में पद्माटवी है, जो दश तालवृक्षों की ऊँचाई के समान विस्तृत और एक योजन ऊँचे कमल-नालों से शोभित है।।१०६।।

मृदुलैस्तालीपञ्चकमानैर्मिलितां च केसरकदम्बैः।
सन्ततगलितमरन्दस्त्रोतोनिर्यन्मिलिन्दसन्दोहाम्।। १०७।।

पद्माटवी में स्थित ये पद्म-समूह पाँच तालवृक्षों की सम्मिलित ऊँचाई के समतुल्य ऊँचाई वाले किञ्जल्कसमूहों से युक्त हैं। निरन्तर मकरन्द-परिस्रवण

१. तपनीयारचितसारिहस्ताभिः—इति पाठान्तरम्

करने वाले स्रोतों से निर्गत पराग-कणों से परिव्याप्त इस पद्माटवी का हम ध्यान करते हैं॥१०७॥

पाटीरपवनबालकधाटीनिर्यत्परागपिञ्जरिताम्   ।
कलहंसीकुलकलकलकूलङ्कषनिनदनिचयकमनीयाम्॥ १ ० ८ ॥
पद्माटवीं भजामः परिमलकल्लोलपक्ष्मलोपान्ताम्।

इस पद्माटवी की तट-भूमि मलय-पवन के मन्द-मन्द झकोरों के कारण झरे हुए कमल-पराग से पीले रंग की हो गई है। इस पद्माटवी का सम्पूर्ण क्षेत्र यहाँ निर्भय होकर विहार करने वाले कलहंस-समूहों के कूजन-कलरव से सदा निनादित होता रहता है। उनके कलरव की गूंज दूर-दूर सुनाई देती है। जिस तरह पलकों की बरौनी नेत्र-कोट से बाहर के क्षेत्र को भी ढांप लेती है, उसी तरह इसके कमल-वनों से निकलने वाली सुगन्ध की लहर से इसका पार्श्वक्षेत्र दूर-दूर तक सुवासित रहता है इस पद्माटवी का हम अपने हृदय में ध्यान करते हैं[१]॥१०८॥

देव्यर्घ्यपात्रधारी तस्याः पूर्वदिशि दशकलायुक्तः।
वलयितमूर्तिर्भगवान् वह्निः क्रोशोन्नतश्चिरं पायात्॥ १ ० ९ ॥

भगवती ललिता के अर्घ्यपात्र को धारण करने के लिये यथा-अनुकूल नत वलयाकार शरीर ग्रहण करके अपनी दस कलाओं सहित कोश मात्र उन्नत जो श्री अग्निदेव इस पद्माटवी की पूर्व दिशा में स्थित हैं, वे हमारी रक्षा करें॥१०९॥

तत्राधारे देव्याः पात्रीरूपः प्रभाकरः श्रीमान्।
द्वादशकलासमेतो ध्वान्तं मम बहलमान्तरं भिन्द्यात्॥ १ १ ० ॥

इस पद्माटवी में अग्निदेवात्मक आधार पर भगवती ललिता के अर्घ्य-पात्र के रूप में अपनी द्वादश कलाओं सहित विराजित श्री सूर्यदेव हमारे हृदय के अज्ञान-अन्धकार को दूर करें॥११०॥

तस्मिन् दिनेशपात्रे तरङ्गितामोदममृतमयमर्घ्यम्।
चन्द्रकलात्मकममृतं सान्द्रीकुर्यादमन्दमानन्दम्॥ १ १ १ ॥

इस सूर्य-मण्डलरूप अर्घ्यपात्र में भगवती ललिता के अर्घ्य द्रव्य के रूप में तरंगित चन्द्रमा की कलाओं का अमृत हमारे आनन्द को सघन और दृढ़ बनाये अर्थात् हमारे आनन्द को वर्धित करे॥१११॥

---

१. मूल ग्रन्थ के श्लोक क्रमांक १०८ के बाद "पद्माटवीं.........लोपान्तम्" एक पंक्ति है। इसी पंक्ति का भी श्लोक संख्या १०८ में समाहार किया गया है।

अमृते तस्मिन्नभितो विहरन्त्यो विविधमणितरणिभाजः।
षोडश कलाः सुधांशोः शोकादुत्तारयन्तु मामनिशम्॥११२॥

भगवती ललिता के अर्घ्यभूत चन्द्र-द्रव्य में विभिन्न मणियों से निर्मित नौकाओं पर निवास करते हुए चन्द्रमा की अमृता आदि कलायें स्वच्छन्द रूप से विहार करती हैं। ये चन्द्र-कलायें हमारे दुःखः-सन्ताप का शमन करें॥११२॥

तत्रैव विहृतिभाजो धातृमुखानां च कारणेशानाम्।
सृष्ट्यादिरूपिकास्ताः शमयन्त्वखिलाः कलाश्च सन्तापम्॥११३॥

इस अर्घ्य-पात्र में सृष्टि-स्थिति-संहार-पिधान (तिरोधान) और अनुग्रहरूप पञ्च कृत्यों के कारण ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश्वर और सदाशिव की जरा-पालिनी आदि समस्त ५१ कलाएँ स्वच्छन्द रूप से विहार करती हैं अर्थात् उसमें निवास करती हैं। ये कलायें हमारे संतापों का शमन करें॥११३॥

विमर्श—इन श्लोकों में 'अर्घ्य' का पारमार्थिक अर्थ समझाया गया है। भगवती के बहिरंग अर्चन के लिये भूमि पर पूजन यंत्र बनाकर जो त्रिकोणाकार या वलयाकार आधार स्थापित किया जाता है, वह धूम्रार्चि आदि कलाओं सहित अग्नि-मण्डल का प्रतीक है। इसीलिये उस पर कलाओं सहित अग्नि-मण्डल का पूजन किया जाता है। चूंकि ज्वालाओं और लपटों के कारण अग्नि-मण्डल धरातल से ऊँचा होता है, अतः अग्निमण्डल के प्रतीक आधार की प्रतीकात्मक ऊँचाई न्यूनतम चार अंगुल से अधिक होती है। उस आधार पर रखा जाने वाला स्वर्ण आदि से निर्मित अर्घ्य-पात्र सूर्यमण्डल का प्रतीक है, अतः उस पर तपिनी-तापिनी आदि कलाओं के साथ सूर्यमण्डल का पूजन किया जाता है। इस अर्घ्य-पात्र में जो अर्घ्य द्रव्य स्थापित किया जाता है, वह कलाओं सहित चन्द्रमण्डल का प्रतीक है, अतः उसमें अमृता आदि कलाओं के साथ चन्द्रमण्डल का पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् उस द्रव्य में ब्रह्मा आदि की जरा-पालिनी आदि कलाओं के साथ मातृकाओं का अर्चन किया जाता है।

कीनाशवरुणकिन्नरराजदिगन्तेषु रत्नगेहस्य।
कलयामि तान्यजस्रं कलयन्त्वायुष्यमर्घ्यपात्राणि॥११४॥

कीनाश अर्थात् यम/वरुण। किन्नरराज से अभिप्राय कुबेर और राज से अभिप्राय देवताओं के राजा इन्द्र से है। इन चारों की दिशाएँ क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व हैं। चिन्तामणि गृह की इन चारो दिशाओं में इन दिक्पालों के लिये जो अर्घ्य आदि पात्र स्थापित हैं, वे हमारी आयुवृद्धि करें॥११४॥

पात्रस्थलस्य पुरतः पद्मारमणविधिपार्वतीशानाम्।
भवनानि शर्मणे नो भवन्तु भासा प्रदीपितजगन्ति॥ ११५॥

प्रमुख पात्रस्थल अर्थात् पद्माटवी के सामने पद्मारमण अर्थात् विष्णु, विधि अर्थात् ब्रह्मा तथा पार्वतीश अर्थात् शिव के भवन हैं, जो अपनी दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रहे हैं। विष्णु-ब्रह्मा और शिव के ये भवन हमारा सदैव कल्याण करें॥११५॥

सदनस्यानलकोणे सततं प्रणमामि कुण्डमाग्नेयम्।
तत्र स्थितं च वह्निं तरलशिखाजटिलमम्बिकाजनकम्॥ ११६॥

चिन्तामणि सदन के अग्निकोण (दक्षिण-पूर्व) में अग्निकुण्ड है, जिसमें अग्नि दहक रही है और उसकी ऊँची-ऊँची लपटें उठ रही हैं। लपटों के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो अग्निदेव स्वर्णिम जटाओं से युक्त हैं। मैं इस अग्निकुण्ड और उसमें प्रज्ज्वलित अग्नि—दोनों को प्रणाम करता हूँ॥११६॥

विमर्श—अम्बिकाजनक—इस श्लोक में अग्नि को अम्बिकाजनक अर्थात् अम्बिका का जनक कहा गया है। पुराणों में ऐसी कोई कथा नहीं है, जिससे अग्नि का अम्बिका का जनक होना सिद्ध होता हो। 'जनक' को यदि 'पिता' के समान माता और पिता दोनों का पर्याय मानें तो अर्थ होगा—अम्बिका जिनकी माता-पिता हैं। हवन करते समय अग्नि को शिव के वीर्य और अम्बिका के गर्भ से उत्पन्न 'पुत्र' माना जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् (६-२-३) में कहा गया है—'तत्तेजोऽसृजत्' अर्थात् उस ब्रह्म ने सबसे पहले तेज (अग्नि) की सृष्टि की। अग्नि से जल और जल से अन्न (पृथ्वी) को पैदा किया। शाक्त मान्यता के अनुसार समस्त सृष्टि तथा सृष्टि के उपादान भूतों की उत्पत्ति शक्ति (अम्बिका) से हुई है, अतः 'अग्नि' की उत्पत्ति भी शक्ति अर्थात् अम्बिका से मानी जा सकती है।

तस्यासुरदिशि तादृशरत्नपरिस्फुरितपर्वनवकाढ्यम्।
चक्रात्मकं शताङ्गं शतयोजनमुन्नतं भजे दिव्यम्॥ ११७॥

इस चिन्तामणि-गृह के नैर्ऋत्य कोण में चिन्तामणि-जैसे रत्नों से देदीप्यमान शत योजन की ऊँचाई वाला और रथ के नौ अंगों से संयुक्त जो युद्ध-रथ खड़ा है, मैं उसका अभिवादन करता हूँ॥११७॥

विमर्श—'शताङ्ग' अर्थात् आयोधन रथ—वह रथ जो युद्धोपयोगी हो। यह

रथ सवारी के सामान्य रथ से आकार-प्रकार एवं साज-सज्जा तथा सुविधाओं की दृष्टि से विलक्षण होता है।

तत्राग्नि (तत्रैव) दिशि निषण्णं तपनीयध्वजपरम्पराश्लिष्टम्।
रथमपरं च भवान्या रचयामो मनसि रत्नमयचूडम्।। ११८।।

इस चिन्तामणि-भवन के अग्निकोण में भगवती ललिता का दूसरा रथ खड़ा है, जिसके शिखर रत्न-निर्मित हैं तथा जिन पर सुनहरी पताकायें लहरा रही हैं। मैं मन ही मन इस रथ को भी प्रणाम करता हूँ।।११८।।

विमर्श—प्रकरण-सामर्थ्य से इस श्लोक में 'तत्राग्नि दिशि' पद का प्रयोग सर्वथा समीचीन है। नैर्ऋत्य कोण में भगवती के प्रमुख आयोधन-रथ की स्थिति बताकर उसकी सीध में दूसरे रथ की स्थिति बताना सर्वथा व्यावहारिक क्रम है।

भवनस्य वायुभागे परिष्कृतो विविधवैजयन्तीभिः।
रचयतु मुदं रथेन्द्रः सचिवेशान्याः समस्तवन्द्यायाः।। ११९।।

चिन्तामणि धाम के दक्षिण पार्श्ववर्ती नैर्ऋत्य एवं अग्निकोणों में भगवती के दो रथों की अभिवन्दना करने के बाद यथाक्रम वायव्य और ईशान कोणों में स्थित रथों का वर्णन दो श्लोकों में किया गया है।

चिन्तामणि धाम के वायव्य कोण में भगवती ललिता की सचिव ईशानी देवी का विशाल युद्धरथ खड़ा है। देवताओं, असुरों, मनुष्यों आदि के द्वारा वन्दनीया ईशानी देवी का विशाल रथ तरह-तरह की विजय-पताकाओं से सजा हुआ है। यह दिव्य रथ हमारे हर्ष की सृष्टि करे अर्थात् हमें वे सभी पदार्थ प्रदान करे, जिन्हें पाकर हमें हर्ष होता है।।११९।।

कुर्मोऽधिहृदयमनिशं क्रोडास्यायाः शताङ्गमूर्धन्यम्।
रुद्रदिशि रत्नधाम्नो रुचिरशलाकाप्रपञ्चकञ्चुकितम्।। १२०।।

'क्रोड' अर्थात् शूकर। 'क्रोडास्या' अर्थात् वराहमुखी। देवी वराहमुखी भगवती ललिता की दण्ड नाथा हैं। चिन्तामणि-धाम के ईशान-कोण में देवी वराहमुखी का विशाल युद्धरथ खड़ा है। मैं मन ही मन इस रथ का ध्यान करता हूँ।।१२०।।

चिन्तामणि गृह के चारो कोणों में चार दिव्य रथों की स्थिति बताने के बाद अगले श्लोकों में इसके चतुर्दिक् मन्त्र-स्वरूप में निवास करने वाली देवियों के भवनों का निरूपण किया गया है।

परितो देवीधाम्नः प्रणीतवासा मनुस्वरूपिण्यः।
कुर्वन्तु रश्मिमालाकृतयः कुशलानि देवता निखिलाः॥१२१॥

परा देवी के दिव्य धाम अर्थात् चिन्तामणि धाम के चतुर्दिक् मण्डलाकार तथा प्रकाशमान नक्षत्र-माला के समान स्थित भवनों में जो मन्त्रस्वरूपिणी देवियाँ वास करती हैं, वे सदैव हमारा कल्याण करें॥१२१॥

प्राग्द्वारस्य भवानीधाम्नः पार्श्वद्वयारचितवासे।
मातङ्गीकिटिमुख्यौ मणिसदने मनसि भावयामि चिरम्॥१२२॥

मणिसदन अर्थात् चिन्तामणि भवन में भगवती ललिता के धाम के पूर्व द्वार के दोनों पार्श्वों में मणियों से निर्मित भवनों में देवी मातङ्गी और देवी वराहमुखी रहती हैं। मैं इन दोनों देवियों का स्मरण करता हूँ॥१२२॥

योजनयुगलाभोगा तत्क्रोशपरिणाहयैव भित्त्या च।
चिन्तामणिगृहभूमिर्जीयादाम्नायमयचतुर्द्वारा ॥१२३॥

इस चिन्तामणि गृह का विस्तार दो योजन का है तथा इसकी चहारदीवारी भी दो योजन विस्तार की है। शास्त्र-ज्ञान के उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिमसंज्ञक जो चार आम्नाय हैं, वे चारो आम्नाय चिन्तामणि भवन की चहारदीवारी की चारो दिशाओं में द्वारों के रूप में स्थित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी आम्नाय से श्रीविद्या की साधना की जा सकती है॥१२३॥

द्वारे द्वारे धाम्नः पिण्डीभूता नवीनबिम्बाभाः।
विदधतु विपुलां कीर्तिं दिव्या लौहित्यसिद्धयो देव्यः॥१२४॥

चिन्तामणि भवन के द्वार-द्वार पर अर्थात् प्रत्येक द्वार पर सद्यः पके हुए बिम्बाफल के समान आभा वाली जिन लौहित्य सिद्धि-संज्ञक देवी-समूहों का वास है, वे हमारी कीर्ति में अभिवृद्धि करें॥१२४॥

मणिसदनस्यान्तरतो महनीये रत्नवेदिकामध्ये।
बिन्दुमयचक्रमीडे पीठानामुपरि विरचितावासम्॥१२५॥

उस चिन्तामणि भवन के भीतरी भाग में रत्न-निर्मित वन्दनीय वेदी के मध्य भाग पर जो चक्रपीठ है, मैं उसकी वन्दना करता हूँ॥१२५॥

चक्राणां सकलानां प्रथममधः सीमफलकवास्तव्याः।
अणिमादिसिद्धयो मामवन्तु देवीप्रभास्वरूपिण्यः॥१२६॥

'सकलानां चक्राणां' सकल चक्रों अर्थात् सम्पूर्ण चक्र के सबसे नीचे वाले फलक की प्रथम रेखा पर देवी की प्रभास्वरूपिणी अणिमा आदि सिद्धि-देवियों का वास है। ये देवियाँ हमारा सर्वविध कल्याण और रक्षा करें॥१२६॥

विमर्श—'प्रथममधः सीमफलकः'—सबसे नीचे वाले फलक या चक्र की प्रथम रेखा अर्थात् भूपुर की प्रथम रेखा।

अणिमादिसिद्धिफलकस्योपरिहरिणाङ्कखण्डकृतचूडाः।
भद्रं पक्ष्मलयन्तु ब्राह्मीप्रमुखाश्च मातरोऽस्माकम्॥१२७॥

अणिमा आदि सिद्धियों के आश्रयभूत फलक (रेखा) के ऊपर वाले फलक अर्थात् भूपुर की मध्यवर्तिनी द्वितीय रेखा पर विराजिता ब्राह्मी आदि मातृकायें हैं, जिन्होंने शिरोभूषण के रूप में चन्द्रकला को धारण कर रखा है। ये मातृकायें हमारी उसी तरह रक्षा करें, जिस तरह पलकें आँखों की रक्षा करती हैं॥१२७॥

तस्योपरि मणिफलके तारुण्योत्तुङ्गपीनकुचभाराः।
संक्षोभिणीप्रधानाः भ्रान्तिं विद्रावयन्तु दश मुद्राः॥१२८॥

उपर्युक्त द्वितीय फलक के ऊपर वाले मणिमय फलक पर अर्थात् भूपुर की अन्तर्वर्तिनी तृतीय रेखा पर नव-यौवनसम्पन्ना तथा परिपुष्ट स्तनभार वाली संक्षोभिणी आदि दस मुद्रादेवियों का वास है। ये देवियाँ हमारे अज्ञान का निवारण करें॥१२८॥

फलकत्रयस्वरूपे पृथुले त्रैलोक्यमोहने चक्रे।
दीव्यन्तु प्रकटाख्यास्तासां कर्त्री च भगवती त्रिपुरा॥१२९॥

तीन फलकों वाले इस विशाल त्रैलोक्यमोहन चक्र पर निवास करने वाली प्रकटयोगिनी-संज्ञक देवियाँ तथा इस चक्र की अधीश्वरी भगवती त्रिपुरा उसी प्रकार से हमारे हृदय को प्रकाशित करें, जिस तरह अपनी कान्ति से वे इस चक्र को देदीप्यमान करती हैं॥१२९॥

तदुपरि विपुले धिष्ण्ये तरलदृशस्तरुणकोकनदभासः।
कामाकर्षिण्याद्याः कलये देवीः कलाधरशिखण्डाः॥१३०॥

उपर्युक्त प्रकटयोगिनियों के स्थान के ऊपर अर्थात् भूपुर चक्र के ऊपर सर्वाशापरिपूरक चक्र में कामाकर्षिणी आदि देवियों का वास है। इनकी देहकान्ति अरुण कमल के समान रक्त वर्ण की है। नेत्र चपल और चञ्चल हैं तथा इनके शिरोप्रदेश में द्वितीया की चन्द्रकला का मुकुट है। मैं अत्यन्त श्रद्धा से इनका ध्यान करता हूँ॥१३०॥

सर्वाशापरिपूरकचक्रेऽस्मिन् गुप्तयोगिनीसेव्या।
त्रिपुरेशी मम दुरितं तुद्यात् कण्ठावलम्बिमणिहारा।। १ ३ १ ।।

सर्वाशापरिपूरक नामक इस चक्र में कामाकर्षिणी आदि गुप्त योगिनियों द्वारा सेविता भगवती त्रिपुरेशी का वास है। इनके गले में लम्बी माला है तथा वे इस चक्र की स्वामिनी हैं। देवी त्रिपुरेशी हमारे सन्तापों का शमन करें।।१३१।।

तस्योपरि मणिपीठे ताम्राम्भोरुहदलप्रभाशोणाः।
ध्यायाम्यनङ्गकुसुमाप्रमुखा देवीश्च विधृतकूर्पासाः।। १ ३ २ ।।

सर्वाशापरिपूरक चक्र के ऊपर मणि-निर्मित पीठ पर अनङ्गकुसुमा आदि आठ देवियों का वास है। अरुण कमल के समान अरुणाभ देह-कान्ति वाली इन देवियों की कञ्चुकी (चोली) की बांह कोहनी तक लम्बी है। मैं मन ही मन इन देवियों का ध्यान करता हूँ।।१३२।।

संक्षोभकारकेऽस्मिंश्चक्रे श्रीत्रिपुरसुन्दरी साक्षात्।
गोप्त्री गुप्ततराख्या गोपायतु मां कृपार्द्रया दृष्ट्या।। १ ३ ३ ।।

सर्वसंक्षोभक नामक इस चक्र में गुप्ततर योगिनियों के द्वारा सेविता इस चक्र की स्वामिनी भगवती त्रिपुरसुन्दरी विराजिता हैं। वे देवी त्रिपुरसुन्दरी अपनी कृपादृष्टि से हमारी रक्षा करें।।१३३।।

संक्षोभिणीप्रधानाः शक्तीस्तस्योर्ध्ववलयकृतवासाः।
आलोलनीलवेणीरन्तः कलयामि यौवनोन्मत्ताः।। १ ३ ४ ।।

इस चक्र के ऊपर वाले चक्र में श्याम वर्ण की चञ्चल चोटी वाली यौवनोन्मत्त सर्वसंक्षोभिणी आदि (चतुर्दश) देवियों का वास है। इन देवियों का ध्यान करके मैं उनकी वन्दना करता हूँ।।१३४।।

सौभाग्यदायकेऽस्मिँश्चक्रेशी त्रिपुरवासिनी जीयात्।
शक्तीश्च सम्प्रदायाभिधाः समस्ताः प्रमोदयन्त्वनिशम्।। १ ३ ५ ।।

चतुर्दश दल वाले इस सौभाग्यदायक-संज्ञक चक्र में चक्रेश्वरी के रूप में प्रतिष्ठिता देवी त्रिपुरवासिनी की जय हो। इस चक्र में निवास करने वाली सर्व-संक्षोभिणी आदि सम्प्रदाययोगिनियों सहित वे देवी त्रिपुरवासिनी हमें आनन्द प्रदान करें।।१३५।।

मणिपीठोपरि तासां महति चतुर्हस्तविस्तृते वलये।
सन्ततविरचितवासाः शक्तीः कलयामि सर्वसिद्धिमुखाः।। १ ३ ६ ।।

सम्प्रदाययोगिनियों के मणिपीठ के ऊपर चार हाथ परिमाण वाले विशाल वलयाकार पीठ पर निर्मित आवासों में सदैव निवास करने वाली सर्वसिद्धिप्रदा आदि देवियों का मैं ध्यानपूर्वक अभिवादन करता हूँ।।१३६।।

सर्वार्थसाधकाख्ये चक्रेऽमुष्मिन् समस्तफलदात्री।
त्रिपुरा श्रीर्मम कुशलं दिशतादुत्तीर्णयोगिनिसेव्या।।१३७।।

इस सर्वार्थसाधक चक्र में भोग और मोक्षरूप समस्त फल प्रदान करने वाली सर्वसिद्धिप्रदा आदि उत्तीर्णयोगिनियों के द्वारा संसेविता चक्रेश्वरी देवी त्रिपुराश्री भोग और मोक्षरूप लक्ष्मी प्रदान करके मेरा सर्वविधि कल्याण करें।।१३७।।

तासां निलयस्योपरि धिष्ण्ये कौसुम्भकञ्चुकमनोज्ञाः।
सर्वाज्ञाद्याः देव्यः सकलाः सम्पादयन्तु मम कीर्तिम्।।१३८।।

इनके निलय से ऊपर वाले लोक में कुसुम्बी रंग की चोली पहनने वाली जो सर्वाज्ञा आदि देवियाँ निवास करती हैं, वे मुझे यश और कीर्ति प्रदान करें।।१३८।।

चक्रे समस्तरक्षाकरनाम्न्यस्मिन् समस्तजनसेव्याम्।
मनसि निगर्भासहितां मन्ये श्रीत्रिपुरमालिनीं देवीम्।।१३९।।

इस सर्वरक्षाकर नामक चक्र में समस्त जीवों के द्वारा सेवनीया निगर्भा देवियों के साथ चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी का वास है। मैं ध्यानपूर्वक उन्हें प्रणाम करता हूँ।।१३९।।

सर्वाज्ञासदनस्योपरि चक्रे विपुले समाकलितगेहाः।
वन्दे वशिनीमुख्याः शक्तीः सिन्दूररेणुरुचः।।१४०।।

सर्वाज्ञा आदि देवियों के निलय के ऊपर वाले विशाल चक्र में पिसे हुए महीन सिन्दूर के समान सिन्दूरी आभा वाली वशिनी आदि (वाग्देवताओं) देवियों का वास है। इनकी सिन्दूरी देहकान्ति से इनके सदनों का वर्ण भी सिन्दूरी प्रतीत होता है। मैं ध्यानपूर्वक इनकी वन्दना करता हूँ।।१४०।।

श्रीसर्वरोगहराख्यचक्रेऽस्मिँस्त्रिपुरपूर्विकां सिद्धाम्।
वन्दे रहस्यनाम्ना वेद्याभिः शक्तिभिः सदा सेव्याम्।।१४१।।

वशिनी आदि देवियों के निलय की संज्ञा सर्वरोगहर चक्र है। इस चक्र में रहस्ययोगिनियों के द्वारा सेविता देवी त्रिपुरासिद्धा का निलय है। मैं उनकी वन्दना करता हूँ।।१४१।।

वशिनीगृहोपरिष्टाद् विंशतिहस्तोन्नते महापीठे।
शमयन्तु शत्रुवृन्दं शस्त्राण्यस्त्राणि चादिदम्पत्योः।।१४२।।

वशिनी आदि वाग्देवताओं के सदन के ऊपर बीस हाथ समुन्नत पीठ पर आदि-दम्पत्ति अर्थात् ललिता और कामेश्वर शिव के चाप-वाण-पाश और अंकुश-संज्ञक अस्त्र-शस्त्र प्रतिष्ठित हैं। वे हमारे शत्रुओं का शमन करें।।१४२।।

शस्त्रसदनोपरिष्टाद् वलये बलवैरिरत्नसंघटिते।
कामेश्वरीप्रधानाः कलये देवीः समस्तजनवन्द्याः।।१४३।।

विश्व के माता-पिता शिव-दम्पत्ति के शस्त्रागार के ऊपर इन्द्रनील मणियों से निर्मित मण्डल में कामेश्वरी आदि (कामेश्वरी-भगमालिनी और वज्रेश्वरी) देवियों का वास है। मैं उनकी वन्दना करता हूँ।।१४३।।

विमर्श—'बलवैरिरत्नसंघटिते'—बल नामक असुर का शत्रु अर्थात् इन्द्र। बलवैरिरत्न अर्थात् इन्द्रनील मणि। इस मणि से निर्मित।

चक्रेऽत्र सर्वसिद्धिप्रदनामनि सर्वफलदात्री।
त्रिपुराम्बावतु सततं परापररहस्ययोगिनीसेव्या।।१४४।।

सर्वसिद्धिप्रद नामक इस चक्र में अपने भक्तों को समस्त वांछित फल प्रदान करने वाली परापररहस्ययोगिनियों के द्वारा संसेविता देवी त्रिपुराम्बा का वास है। वे सदैव हमारी रक्षा करें।।१४४।।

कामेश्वरीगृहोपरिवलये विविधमनुसम्प्रदायज्ञाः।
चत्वारो युगनाथा जयन्तु मित्रेशपूर्वकाः गुरवः।।१४५।।

कामेश्वरी आदि देवियों के मण्डल के ऊपर विविध मन्त्रोपासना सम्प्रदायों के ज्ञाता मित्रेश आदि चारो युगनाथों का वास है। इन युगनाथों की सदा जय हो।।१४५।।

विमर्श—मित्रेश आदि नाथ सत्ययुग आदि चारो युगो में कौल आदि सम्प्रदायों तथा उनके रहस्यचर्या एवं मन्त्रप्रयोग का प्रर्वतन करते हैं। अतः इन्हें युगनाथ कहा जाता है। ये नाथ हैं—१. मित्रेशनाथ, २. षष्ठीशनाथ, ३. उड्डीशनाथ और ४. चर्यानन्दनाथ। कतिपय ग्रन्थों में इनके नाम हैं—१. खगेन्द्रनाथ, २. कूर्मनाथ, ३. मेषनाथ और ४. मत्स्येन्द्रनाथ।

नाथभवनोपरिष्टान्नानारत्नचयमेदुरे पीठे।
कामेश्याद्या नित्याः कलयन्तु मुदं तिथिस्वरूपिण्यः।।१४६।।

नाथ-चतुष्टय के धाम से ऊपर नाना प्रकार के रत्नों से खचित सान्द्र-स्निग्ध

कान्तियुक्त पीठ है। इस पीठ में तिथिस्वरूपिणी कामेशी आदि पन्द्रह (१५) नित्याओं का वास है। ये नित्यायें हमें हर्ष एवं आनन्द प्रदान करें।।१४६।।

विमर्श—श्रीयंत्र पर कामेश्वरी अथवा कामेशी-संज्ञक तीन देवियों की पूजा होती है। प्रथम हैं—रहस्ययोगिनी देवी कामेश्वरी। स्वयं भगवती ललिता स्वयं कामेश्वरी हैं। तीसरी कामेश्वरी प्रथमा तिथिनित्या हैं।

नित्यासदनस्योपरि निर्मलमणिनिवहविरचिते धिष्ण्ये।
कुशलं षडङ्गदेव्यः कलयन्त्वस्माकमुत्तरलनेत्राः।।१४७।।

नित्यादेवियों के सदन के ऊपर बेदाग मणियों से निर्मित जो देव-सदन है, उसमें चञ्चल नेत्र वाली हृदय आदि षडङ्गदेवियों का वास है। ये अंगदेवियाँ नित्य प्रति हमारा कल्याण करें।।१४७।।

सदनस्योपरि तासां सर्वानन्दमयनामके बिन्दौ।
पञ्च ब्रह्माकारं मञ्चं प्रणमामि मणिगणाकीर्णम्।।१४८।।

इन अंगदेवियों के धाम के ऊपर सर्वानन्दमय नामक बिन्दुचक्र है। श्रीयन्त्र के इस मध्य केन्द्र पर विभिन्न मणियों से खचित पञ्च ब्रह्माकार मञ्च है। मैं इस मञ्च को प्रणाम करता हूँ।।१४८।।

विमर्श—ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर और सदाशिव—ये विश्वरूप कार्य के नियामक हैं। इनमें से प्रथम चार अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र और ईश्वर सर्वानन्दचक्र स्थित मञ्च के चार पैर तथा सदाशिव मञ्च पर फलक (गद्दा) स्वरूप हैं।

परितो मणिमञ्चस्य प्रलम्बमाना नियन्त्रिता पाशैः।
मायामयी जवनिका मम दुरितं हरतु मेचकच्छाया।।१४९।।

इस मणिखचित पञ्चब्रह्मात्मक मञ्च के चारो ओर मजबूत डोरों से नियंत्रित माया का काला पर्दा पड़ा हुआ है। यह पर्दा मेरे पापों का हरण करे।।१४९।।

मञ्चस्योपरि लम्बन्मदनीपुंनागमालिकाभरितम्।
हरिगोपमयवितानं हरतादालस्यमनिशमस्माकम्।।१५०।।

इस मणिमय मञ्च पर वितान (चंदोवा) तना हुआ है, जिसमें धतूरे और नागकेशर के फूलों की मालाओं की झालर लगी है। इन लम्वी-लम्बी झालरों के कारण जो वितान बीरबहूटी (हरिगोप) के समान लाल-लाल प्रतीत होता है, वह हमारे आलस्य को दूर करके हमें चैतन्य करे।।१५०।।

विमर्श—लाल रंग उत्साह और कर्मठता का प्रतीत है। अत: वितान की

लालिमा से साधना और उपासना में आने वाले आलस्य के निवारण की याचना या कामना करना सर्वथा सार्थक है।

पर्यंकस्य भजामः पादान् बिम्बाम्बुदेन्दुहेमरुचः।
अजहरिरुद्रेशमयाननलासुरमारुतेशकोणस्थान्॥ १५१॥

इस मणिखचित विशाल पर्यङ्क (पलंग) के आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान—इन चारो कोणों में बिम्ब (बिम्बाफल या वेल) के समान लाल रंग की, वादल के समान श्यामल वर्ण की, चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण की तथा स्वर्ण के समान पीत वर्ण की देहकान्ति वाले जो ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र और ईश्वर प्रतिष्ठित हैं, मैं उनका स्तवन करता हूँ॥१५१॥

विमर्श—इस श्लोक में बताया गया है कि भगवती ललिता के मणि-खचित पलंग के आग्नेय कोण वाले पाये के रूप में प्रजापिता ब्रह्माजी विराजित हैं। उनकी देहकान्ति बिम्बाफल (कुंदरू) या बेल के समान लाल है। नैर्ऋत्यकोण वाले पाये के रूप में विष्णुजी विराजित हैं। उनकी देहकान्ति बादल के समान श्यामल है। वायव्य में चन्द्रमा के समान धवल एवं शुभ्र देहकान्ति वाले भगवान् रुद्र तथा ईशान कोण में स्वर्ण वर्ण वाले ईश्वर विराजित हैं।

फलकं सदाशिवमयं प्रणौमि सिन्दूररेणुकिरणाभम्।
आरभ्याङ्गेशीनां सदनात् कलितं च रत्नसोपानम्॥ १५२॥

इस मणिखचित पलंग पर गद्दे के रूप में ऊर्ध्वमुख भगवान् सदाशिव लेटे हुए हैं, जिनके देह से सिन्दूरी किरणें निकल रही हैं अर्थात् जिनकी देहकान्ति सिन्दूरी है। हृदय आदि षडङ्गदेवियों के धाम से मंच के फलक तक रत्न-सोपान-मय समग्र पर्यंक को मैं प्रणाम करता हूँ॥१५२॥

विमर्श—श्लोकसंख्या १४७ में वताया गया है कि कामेश्वरी आदि नित्या देवियों के धाम के ऊपर हृदय आदि षडङ्गदेवियों का स्थान है। इसके ऊपर सर्वानन्दमय चक्र (बिन्दु) है, जिस पर पञ्चब्रह्माकार मणिखचित पर्यंक है। षडंग-देवियों के स्थान से पर्यंक के फलक (तख्ता) तक पहुँचने के लिये रत्नों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कवि-हृदय दुर्वासा ने रत्नसोपानमय समग्र पर्यंक को इस श्लोक में प्रणाम किया है।

पट्टोपधानगण्डकचतुष्टयस्फुरितपाटलास्तरणम्।
पर्यङ्कोपरि घटितं पातु चिरं हंसतूलशयनं नः॥ १५३॥

इस पलंग पर हंस के मुलायम पंखों का गद्दा है, जिस पर लाल रंग का

पलंगपोश बिछा हुआ है। इस पलंग पर चारो ओर कौशेय अर्थात् कोसे के बने हुए गाव-तकिये मण्डलाकार रखे हुए हैं। यह दिव्य पर्यंक हमारी रक्षा करे॥१५३॥

तस्योपरि निवसन्तं तारुण्यश्रीनिषेवितं सततम्।
आवृन्तफुल्लहल्लकमरीचिकापुञ्जमञ्जुलच्छायम्॥ १५४॥

अब इस श्लोक (१५४) से प्रारम्भ कर श्लोकसंख्या (१५९) पर्यंत छः श्लोकों में भगवान् कामेश्वर के रूप-सौन्दर्य का वर्णन उनका ध्यान करने के लिये किया गया है।

इस मणि-खचित पर्यङ्क पर रक्तकमल के समान अरुणाभ देह-कान्ति वाले चिर-युवा भगवान् कामेश्वर शिव का सतत वास है। उनके शरीर से चिर-यौवन की कान्ति दमकती रहती है। मैं ऐसे कमनीय एवं चिर-युवा कामेश्वर का ध्यान करता हूँ॥१५४॥

सिन्दूरशोणवसनं शीतांशुस्तवकचुम्बितकिरीटम्।
कुङ्कुमतिलकमनोहरकुटिलालिकहसितकुमुदबन्धुशिशुम्॥ १५५॥

भगवान् कामेश्वर के वस्त्र रक्त वर्ण के हैं, ललाट पर कुंकुम का अर्धचन्द्राकार तिलक है, किरीट पर चन्द्रकला की कलगी है॥१५५॥

विमर्श—'शीतांशुस्तबकचुम्बितकिरीटम्'—शशांक अर्थात् चन्द्रमा। स्तबक पुष्पगुच्छ। चन्द्ररूप पुष्पों का गुच्छा जिनके किरीट (मुकुट) का चुम्बन अर्थात् स्पर्श कर रहा है। तात्पर्य यह कि चन्द्रकला उनके मुकुट पर कलगी के रूप में खेल रही है।

पूर्णेन्दुबिम्बवदनं फुल्लसरोजातलोचनत्रितयम्।
तरलापाङ्गतरङ्गितशफराङ्कनशास्त्रसम्प्रदायार्थम्॥ १५६॥

उनका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमण्डल की तरह विकसित एवं धवल है। पूर्णतः खिले हुए कमलों के समान तीन नेत्र हैं। उनके कटाक्षों से मीनकेतन अर्थात् कामदेव के शास्त्रों का अर्थ अभिव्यक्त होता रहता है॥१५६॥

विमर्श—'शफरी' मझोले आकार की एक विशेष प्रजाति की मछली है, जो अत्यन्त चपल होती है और जिसका आकार-प्रकार मनुष्य के नेत्रों के समान होता है। संस्कृत काव्य में नेत्रों की उपमा मछली से भी दी जाती है। चूंकि कामदेव के ध्वज में मछली का निशान है, अतः उसे मीनकेतन कहा जाता है। 'शफराङ्कन' अर्थात् कामदेव।

मणिमयकुण्डलपुष्यन्मरीचिकल्लोलमांसलकपोलम्।
विद्रुमसहोदराधरविसृमरसुस्मितकिशोरसञ्चारम् ॥१५७॥

उनके दोनों कानों में मणिखचित कुण्डल हैं। हिलने पर इन कुण्डलों से प्रकाश की किरणें फूटती हैं। इन प्रकाश-किरणों की आभा से उनका कपोल-मण्डल अर्थात् दोनों गाल और भी अधिक मांसल अर्थात् रक्तिम दिखाई देते हैं। उनके अधर मूँगों के समान लाल वर्ण के हैं, जिन पर हर समय मन्द-मन्द मुस्कान खेलती रहती है॥१५७॥

आमोदिकुसुमशेखरमानीलभ्रूलतायुगमनोज्ञम्।
वीटीसौरभवीचीद्विगुणितवक्त्रारविन्दसौरभ्यम्॥१५८॥

उनका शीर्ष अर्थात् शीश सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत है। दोनों सघन श्याम भौंहें लताओं के समान मनोहर हैं तथा उनके मुँह से निकलने वाली सुगन्ध पान की लताओं की सुगन्ध से बढ़कर है॥१५८॥

पाशांकुशेक्षुचापप्रसवशरस्फुरितकोमलकराब्जम्।
काश्मीरपङ्किलाङ्गं कामेशं मनसि कुर्महे सततम्॥१५९॥

भगवान् कामेश्वर चतुर्भुज हैं। उनके ये चारो हाथ पाश, अंकुश तथा धनुष-बाण से शोभित हैं। कुंकुम के लेप से उनकी देहयष्टि कुछ-कुछ आर्द्र है॥१५९॥

विमर्श—उनके हाथ में 'पाश' नामक जो अस्त्र है, वह प्राणियों के कर्म-संस्कारजन्य बन्धन-शक्ति का प्रतीक है। अंकुश बन्धनों को तोड़ने वाली शक्ति का वाचक है। प्रद्युम्नरूप कामदेव के पुत्र अनिरुद्ध की इच्छाशक्ति का प्रतीक धनुष और बाण हैं।

तस्यांकभुवि निषण्णां तरुणकदम्बप्रसूनकिरणाभाम्।
शीतांशुखण्डचूडां सीमन्तन्यस्तसान्द्रसिन्दूराम्॥१६०॥

कामेश्वर शिव का सौन्दर्य-निरूपण करने के बाद अब इस श्लोक (१६०) से प्रारम्भ कर १६९वें श्लोक-पर्यन्त दस (१०) श्लोकों में भगवती ललिता का रूप-निरूपण किया गया है—

मणि-खचित पर्यंक पर मुदित मन बैठे भगवान् कामेश्वर शिव की गोद में कामेश्वरी ललिता प्रमुदित मन बैठी हुई हैं। उनकी देहकान्ति पूर्ण विकसित कदम्ब-पुष्प की तरह लाल है। सिर पर अर्धचन्द्र की कलगी है। सीमान्त (मांग) में लाल रंग का सिन्दूर दमक रहा है। मैं इतनी सौन्दर्यशालिनी देवी ललिता का हृदय में ध्यान करता हूँ॥१६०॥

कुंकुमललामभास्वन्निटिलां कुटिलतरचिल्लिकायुगलाम्।
नालीकतुल्यनयनां नासाञ्चलनटितमौक्तिकाभरणाम्।। १ ६ १ ।।

कुंकुम के सूर्यबिम्बवत् गोल तिलक से उनका मस्तक दमक रहा है। उनकी दोनों भौंहें सघन और अर्धचन्द्राकार हैं। नेत्र प्रफुल्लित कमल के समान विशाल और सुन्दर हैं। नासाछिद्र में मोती का बना बुलाक है।।१६१।।

अङ्कुरितमन्दहासामरुणाधरकान्तिविजितबिम्बाभाम्।
कस्तूरीमकरीयुतकपोलसङ्क्रान्तकनकताटङ्काम्।। १ ६ २ ।।

उनके अधरों की ललिमा के सामने बिम्बाफल की लालिमा पराभूत है। वे मुस्कुरा रही हैं; मगर उनकी मुस्कान इतनी मन्द है कि उनके मुख-कमल से इसका आभासमात्र होता है। उनके कपोलों पर कुंकुम से मकरों की बहुत छोटी-छोटी आकृतियाँ बनी हैं। कानों में रत्नजटित कुण्डल है। जब उनके ये कुण्डल हिलते हैं, उनसे निकलने वाली किरणों से उनका कपोलमण्डल दमक-दमक उठता है।।१६२।।

विमर्श—काव्य-शास्त्र में हास्य (हंसी) के छः भेद माने गये हैं, जिनमें मन्द हास्य सर्वोत्तम तथा अट्टहास अधम कोटि का हास माना जाता हैं।

कर्पूरसान्द्रवीटीकवलितवदनारविन्दकमनीयाम् ।
कम्बुसहोदरकण्ठप्रलम्बमानाच्छमौक्तिककलापाम्।। १ ६ ३ ।।

उनका गला (ग्रीवा) शंख के समान समुन्नत तथा घुमावदार है और उसमें श्वेत बेदाग मोतियों की लम्बी माला झूल रही है। कपूर और इलाइची आदि से युक्त पान की गिलौरी दबे रहने से उनका मुख-मण्डल और भी खिला-खिला प्रतीत होता है।।१६३।।

कह्लारदामकोमलभुजयुगलस्फुरितरत्नकेयूराम् ।
करपद्ममूलविलसत्काञ्चनमयकटकवलयसन्दोहाम्।। १ ६ ४ ।।

कल्हार जाति के कमलों के समान प्रफुल्ल और मसृण भुजाओं पर रत्न-जटित केयूर (बाजूबन्द) तथा करमूल (कलाइयों) में सोने की चूड़ियाँ हैं।।१६४।।

पाणिचतुष्टयविलसत्पाशाङ्कुशपुण्ड्रचापपुष्पास्त्राम्।
कूलङ्कषकुचशिखरां कुङ्कुमकर्दमितरत्नकूर्पासाम्।। १ ६ ५ ।।

वे चतुर्भुजा हैं तथा उनके हाथों में पाश, अंकुश, पुष्प-बाण और गन्ने का धनुष है। पुष्ट स्तनों का उभार छिपाये नहीं छिपता है। ऐसे परिपुष्ट स्तनमण्डल पर कुंकुम का गाढ़ा लेप है, जिनके कारण उनकी रत्नजटित अंगिया भी चिपचिपी हो गई है।।१६५।।

विमर्श—कामेश्वर शिव और कामेश्वरी ललिता के आयुध एक समान ही हैं। भगवती ललिता के ऊपर वाले बाँयें हाथ में पाश-नामक अस्त्र है, जो निग्रह का द्योतक है। ऊपरी दाँयें हाथ में अंकुश है, जो अनुग्रह का द्योतक है। नीचे वाले बाँयें और दाहिने हाथ में फूलों के बाण तथा गन्ने का धनुष है, जो कामनाओं और लालसाओं के द्योतक हैं। आयुध या हथियार आत्मरक्षा के निमित्त शत्रुओं के दमन और शमन के साधन हैं। कामनायें और लालसायें मनुष्य (आत्मा) के सबसे वड़े शत्रु हैं, जो उसे जीवनचक्र में फँसाये रखते हैं। आत्मोन्नति की लालसा और कामना- रूप शत्रुओं को ही अस्त्र के रूप में धारण करके वे यह सीख देती हैं कि सफल सांसारिक जीवन-यापन करते हुए सर्वोच्च आत्मोन्नति पाने के लिये साधक को लालसा और कामनारूप शत्रुओं को ही शत्रु-दमन के साधन के रूप में प्रयोग करने में कुशल होना चाहिए। जब शत्रु ही शत्रु-दमन के साधन बन जायेंगे तो शत्रु ही कहाँ शेष रहेंगे।

अणुदायादवलग्नामम्बुदशोभासनाभिरोमलताम् ।
माणिक्यखचितकाञ्चीमरीचिकाक्रान्तमांसलनितम्बाम्।। १६६ ।।

ब्रह्माण्ड में सबसे सूक्ष्म वस्तु परमाणु है। देवी ललिता की कटि अर्थात् कमर परमाणु से भी सूक्ष्म है। उदर-प्रदेश में हल्के बादलों की शोभा (रंगत) वाली रोमावली है। कमर में रत्न-खचित तथा स्वर्ण-निर्मित काञ्ची (करधन) है, जो मण्डलाकार नितम्बों की भी शोभा बढ़ा रही है।।१६६।।

करभोरुकाण्डयुगलां जङ्घाजितकामजैत्रतूणीराम्।
प्रपदपरिभूतकूर्मामुत्तरलापाङ्गपोषितानङ्गाम् ।। १६७ ।।

उनका उरुप्रदेश हाथी के सूंड के समान गोलाकार तथा स्थूल है। उनकी दोनों जंघाओं की सुन्दरता के आगे कामदेव के तूणीर (तरकश) की सुन्दरता हेय है। नव पल्लवों की कान्ति वाले उनके चरणयुगलों के ऊपरी भाग की सुन्दरता कूर्म-पृष्ठ की सुन्दरता से भी बढ़-चढ़कर है।।१६७।।

विमर्श—प्रत्येक मनुष्य के दोनों चरण ऊपर की ओर स्थूल तथा अंगुलियों की ओर पतले होते जाते हैं और इस कारण पैर के ऊपरी भाग की आकृति घुमावदार होती है। इसी घुमाव के कारण पैर सुन्दर दिखाई देते हैं। इस श्लोक में भगवती के चरणों के इसी घुमाव की वन्दना की गई है।

कमलभवकञ्जलोचनकिरीटरत्नांशुरञ्जितपदाब्जाम्।
उन्मस्तकानुकम्पामुत्तरलापाङ्गपोषितानङ्गम् ।। १६८ ।।

कमलभव (ब्रह्मा) तथा कञ्जलोचन (विष्णु) के मुकुटों में खचित रत्नों की किरणों से भगवती ललिता के चरण-कमल अलङ्कृत हैं। सभी प्राणियों पर अनुग्रह की वर्षा करने के लिये वे सदैव तत्पर रहती हैं और उनकी ही कृपा-कटाक्ष से कामदेव वर्धित होता है अर्थात् जीवन-शक्ति प्राप्त करता है।।१६८।।

विमर्श—चरणकमल अलंकृत हैं—प्रजापति ब्रह्मा और विश्वम्भर विष्णु भगवती के चरणों पर सिर रखकर जब उन्हें प्रणाम करते हैं, तब उनके मुकुटों में जड़े रत्नों की किरणें भगवती के चरणों को आलोकित करती हैं।

आदिमरसावलम्बामनिदंप्रथमोक्तिवल्लरीकलिकाम्।
आब्रह्मकीटजननीमन्तः कलयामि सुन्दरीमनिशम्।। १६९ ।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही आदिम रस अर्थात् शृंगार रस की आलम्बन-स्वरूपा है अर्थात् उनके ही लोकोत्तर सौन्दर्य पर शृंगार रस का दारोमदार है। वे 'इदं'रूपा नहीं; अपितु 'अनिदं' (अन्+इदम्) रूपा हैं अर्थात् इनका आविर्भाव (उत्पत्ति) किससे हुआ, यह किसी को ज्ञात नहीं है। वे ही वह कलिका हैं, जिससे विश्व-परम्परारूपी वल्लरी (लता) विकसित हुई है अर्थात् वे ही विश्व की सृष्टि का आदिकारण हैं। ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र कीट-पतंगों तक समस्त सृष्टि की उत्पत्ति उन्हीं से हुई है।।१६९।।

विमर्श—शिव और शक्ति का जब 'अहंता' स्वरूप भङ्ग होता है, उसके बाद सृष्टि के उन्मेष की प्रक्रिया में 'इदम्' का विकास होता है और जब इदन्ता (Thatness) का विकास हो जाता है, तब सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

कस्तु क्षितौ पटीयान् वस्तु स्तोतुं शिवाङ्कवास्तव्यम्।
अस्तु चिरन्तनसुकृतैः प्रस्तुतकाम्याय तन्मम पुरस्तात्।। १७० ।।

भगवान् कामेश्वर शिव के अङ्क (गोद) में सदैव विराजित रहने वाली 'ललिता'-संज्ञक इस परम सत्ता की महिमा का पूर्ण रूप से गुणगान करने में कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है। अनन्त जन्मों के पुण्यकर्मों से प्राप्त होने वाली ललितारूपा यह परम सत्ता मेरे द्वारा प्रारम्भ किये गये भोग-मोक्ष उभयरूप काम्य कर्मों की सम्पूर्णता के लिये प्रकट होकर मुझे सदैव दर्शन देती रहे।।१७०।।

प्रभुसम्मितोक्तिगम्यं परमशिवोत्सङ्गपर्यङ्कम्।
तेजः किञ्चन दिव्यं पुरतो मे भवतु पुण्ड्रकोदण्डम्।। १७१ ।।

प्रभु अर्थात् भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट निगम और आगम आदि शास्त्रों से ही जिसका ज्ञान प्राप्त होता है तथा जो भगवान् कामेश्वर की गोद में विराजित है, वह परम-सत्ता इक्षु (गन्ना)-निर्मित धनुषधारिणी ललिता के रूप में मुझे अपना पावन दर्शन दें।।१७१।।

मधुरिमभरितशरासं मकरन्दस्यन्दिमार्गणोदारम्।
कैरविणीविटचूडं कैवल्यायास्तु किञ्चन महो नः।।१७२।।

भगवती ललिता के रूप में दर्शन देने के लिये मेरे समक्ष प्रकट वह महान् दिव्य तेज, जिसके इक्षु-निर्मित धनुष में सदैव रस का सञ्चार होता रहता है और जिसके रसवर्षी बाण अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हैं तथा जिनका शिरोप्रदेश चन्द्रकला से लसित है, वह परम तेज मेरी मुक्ति का कारण बने अर्थात् मुझे कैवल्य प्रदान करे।।१७२।।

अक्षुद्रमिक्षुचापं परोक्षमवलग्नसीमनि त्र्यक्षम्।
क्षपयतु मे क्षेमेतरमुक्षरथप्रेमपक्ष्मलं तेजः।।१७३।।

देवी ललिता का इक्षुधनुष आदि-अन्तरहित असीम प्रभाव वाला है। अत्यन्त क्षीण होने के कारण उनका कटि-प्रदेश दृष्टिगोचर ही नहीं होता। वृषभवाहन कामेश्वर-शिव के प्रति उनका इतना अधिक प्रेम है कि प्रतिक्षण उन्हें देखते रहने के लिये ही उन्होंने नेत्रों को धारण किया है। भगवती ललिता के रूप में रूपायित संवित् रूप प्रकाश का विमर्शरूप दिव्य तेज मेरे समस्त अमङ्गलों का विनाश करे।।१७३।।

भृङ्गरुचिसङ्गरकरापाङ्गं शृङ्गारतुङ्गमरुणाङ्गम्।
मङ्गलमभङ्गुरं मे घटयतु गङ्गाधराङ्गसङ्गि महः।।१७४।।

उनके नेत्रों की नीलिमा भ्रमरों की श्यामता से भी बढ़-चढ़कर है। उनकी देह-कान्ति मूर्तिमान् शृंगार रस की देहकान्ति से भी अधिक अरुण है। इतनी सौन्दर्य-शालिनी देवी ललिता के रूप में गंगाधर अर्थात् कामेश्वर शिव के साकार विग्रह के साथ एकत्व प्राप्त संवित् रूप प्रकाश का विमर्शरूप वह दिव्य तेज:पुञ्ज निरंतर हमारा कल्याण करे।।१७४।।

विमर्श—'गंगाधराङ्गसङ्गि'—गंगाधरस्य शिवस्य यदङ्गं शरीरं तस्य सङ्गि तेन साकमेकीभूतवपु:—शिव के साथ जिसका शरीर एकाकार हो गया है। शिव और शक्ति एक होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं। यहाँ इसी भाव को दर्शाया गया है।

प्रपदजितकूर्ममूर्जितकरुणं मर्मरुचिनिमथनदेहम्।
श्रितवर्म मर्म शम्भोः किञ्चन मम नर्म शर्म निर्मातु।।१७५।।

'प्रपद' अर्थात् पैर का अग्रभाग। जिसके पैरों (पिण्डलियों) की घुमावदार सुडौलता ने कूर्मपृष्ठ अर्थात् कछुवे के पीठ की व्रकता को पराजित कर दिया है, जिसकी देहकान्ति के समक्ष तपाये हुए सोने की दमक भी फीकी है, जो अत्यन्त करुणामयी है, जिसके वक्ष:स्थल पर कञ्चुकी (चोली) का कवच है और जो शिवजी की रहस्य क्रीडा की सहायभूता है, वह अनिर्वचनीय अवाङ्मनसगोचर दिव्य तेज मुझे भोग-मोक्षरूप कल्याण प्रदान करे।।१७५।।

कालकुरलालिकालिमकन्दलविजितालि विधृतमणिवालि।
मिलतु हृदि पुलिनजघनं बहुलितगलगरलकेलि किमपि महः।।१७६।।

भगवती ललिता की सघन केशराशि भ्रमरसमूह की समवेत कालिमा से भी अधिक काली है। उनके कानों में बाली है। जघन-प्रदेश अर्थात् कटि का अग्रभाग बालुकामय नदी के तट के समान विस्तृत हैं और जो भगवान् कामेश्वर की लीला-सहचरी हैं। भगवती ललिता के रूप में परिणत वह अवाङ्-मनसगोचर तेजोराशि मेरे हृदय में सदैव प्रकाशित होती रहे अर्थात् मैं अहर्निश उसका दर्शन करता रहूँ।।१७६।।

कुङ्कुमतिलकितभाला कुरुविन्दच्छायपाटलदुकूला।
करुणापयोधिवेला काचन चित्ते चकास्तु मे लीला।।१७७।।

जिनके भाल पर कुंकुम का टीका है, जिनकी कान्ति कुरुविन्द रत्न के समान अरुण है तथा जिनके वस्त्र पाटल वर्ण अर्थात् गुलाबी रंग के हैं, वह लीलामयी परमेश्वरी सदैव मेरे चित्त में क्रीड़ा करती रहें।।१७७।।

पुष्पन्धयरुचिवेण्यः पुलिनाभोगत्रपाकरश्रोण्यः।
जीयासुरिक्षुपाण्यः काश्चन कामारिकेलिसाक्षिण्यः।।१७८।।

जिनकी वेणी भौरों के समूह से भी अधिक काली है, जिनका कटिभाग नदी के सैकत (रेतीले) तट से भी अधिक विशाल है, जिनके हाथ में इक्षु (गन्ने) का धनुष है तथा जो कामारि कामेश्वर के लीलाविलास की साक्षिणी हैं, उनकी सदा जय-जयकार होती रहे।।१७८।।

तपनीयांशुकभांसि द्राक्षामाधुर्यनास्तिकवचांसि।
कतिचन शुचं महांसि क्षपयन्तु कपालितोषितमनांसि।।१७९।।

तपाये हुए सोने की-सी कान्ति वाली भगवती ललिता, जिनकी वाणी शहद

से भी अधिक मीठी है तथा केवल जिनके लीलासाहचर्य से कपाली अर्थात् शिव के मन को संतोष प्राप्त होता है, उस ललिता के रूप में परिणत तेजोराशि हमारे दु:ख, दारिद्र्य और अभावों को दूर करे॥१७९॥

असितकचमायताक्षं कुसुमशरं कूलमुद्वहकृपार्द्रम्।
आदिमरसाधिदैवतमन्तः कलये हराङ्कवासि महः॥१८०॥

भगवती ललिता की केशराशि अत्यन्त काले रंग की है। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं, हाथों में फूलों के बाण हैं। उनकी कृपा क्षण-प्रतिक्षण अपने तटों का स्पर्श करने वाली नदी के समान है, जो शृंगार रस की अधिदेवता हैं तथा सदैव भगवान् कामेश्वर के अंक (गोद) में वास करती हैं। इतनी सौन्दर्यशालिनी तथा कृपामयी देवी ललिता के रूप में परिणत दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ॥१८०॥

विमर्श—'कूलमुद्वहकृपार्द्रम्'—अपने तटों का स्पर्श करने वाली कृपा से आर्द्र नदी। अपने तटों का हमेशा स्पर्श करते हुए बहते रहना उसकी उदारता तथा महती कृपा का परिचायक है। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी कृपाधारा किसी भी क्षण अपने भक्तों का त्याग नहीं करती।

कर्णोपान्ततरङ्गितकटाक्षविस्पन्दिकण्ठदध्नकृपाम्।
कामेश्वराङ्कनिलयां कामपि विद्यां पुरातनीं कलये॥१८१॥

जिसके कृपा-कटाक्ष कानों तक विस्तृत हैं तथा जिनके कण्ठ तक कृपा-अमृत भरा हुआ है तथा जिनका एकमात्र वासस्थान भगवान् कामेश्वर का अङ्क (गोद) है, मैं ऐसी वर्णनातीता सनातनी परा शक्तिरूपिणी देवी का अपने हृदय में ध्यान करता हूँ॥१८१॥

विमर्श—कण्ठ तक कृपा-अमृत का भरा होना तथा कानों तक कृपादृष्टि का विस्तार उनकी निस्सीम करुणा और कृपा के अभिव्यञ्जक हैं।

अरविन्दकान्त्यरुन्तुदविलोचनद्वन्द्वसुन्दरमुखेन्दु।
छन्दःकन्दलमन्दिरमन्तःपुरमैन्दुशेखरं वन्दे॥१८२॥

उनकी देहकान्ति कमल की शोभाश्री के मर्म को भी भेद जाती है अर्थात् कमल की शोभा उनकी देह-कान्ति के समक्ष हेय है। वे सुनयना हैं अर्थात् उनके नेत्र स्वयं तो सुन्दर और मनोहर हैं ही, साथ ही वे उनके चन्द्रमा के समान धवल मुख की शोभा को भी संवर्धित करते हैं। जो समस्त कामनाओं की आगारस्वरूपा तथा चन्द्रशेखर शिव की अन्त:पुरवासिनी हैं, मैं उस पराशक्ति की वन्दना करता हूँ॥१८२॥

बिम्बिनिकुरम्बडम्बरविडम्बकच्छायमम्बरवलग्नम्।
कम्बुगलमम्बुदकचं बिब्बोकं कमपि चुम्बतु मनो मे।। १ ८ ३ ।।

जिसका कटि-प्रदेश (कमर) आकाश से भी सूक्ष्म है, जिसका गला शंख के समान गोल तथा सुडौल है, जिसकी केशराशि मेघ के समान काली तथा सघन है तथा जिसकी देहकान्ति की धवलता और दीप्तिमत्ता के समक्ष अनेकानेक चन्द्र-समूहों की एकीभूत कान्ति भी फीकी है, उस अचिन्त्य और अद्‌भुत पराशक्ति के दर्शन ध्यानावस्था में मुझे सदैव होते रहें।।१८३।।

किमपि कमनीयरूपं कलयाम्यन्तः कदम्बकुसुमाढ्यम्।
चम्पकरुचिरसुवेषैः सम्पादितकान्त्यलङ्कृतदिगन्तम्।। १ ८ ४ ।।

चम्पई रंग के वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत कदम्बपुष्प के समान रक्ताभ देह से उत्सर्जित कान्ति से दिशाओं को भी आलोकित कर देने वाले कमनीय रूप का अर्थात् पराशक्त्यात्मक ललिता देवीरूप का मैं ध्यान करता हूँ।।१८४।।

शम्पारुचिभरगर्हासम्पादककान्तिकवचितदिगन्तम्।
सिद्धान्तं निगमानां शुद्धान्तं किमपि शूलिनः कलये।। १ ८ ५ ।।

जिसने अपनी अपार दिव्य दीप्ति-सम्पन्नता से बिजली की चमक को भी धूमिल कर दिया है, जिसकी आभा के प्रवाह से सारी दिशायें आलोकित हैं तथा जो समस्त निगमों और आगमों के प्रतिपाद्य परमतत्त्वरूप शिव की अचिन्त्य पराशक्ति-रूपा है तथा जो मायातीत है और शिव में ही स्थित है, मैं उसका शुद्ध मन से ध्यान करता हूँ।।१८५।।

उद्यद्दिनकरशोणान् उत्पलबन्धुस्तनन्धयापीडान्।
करकलितपुण्ड्रचापान् कलये कानपि कपर्दिनः प्राणान्।। १ ८ ६ ।।

उगते हुए सूर्य के समान जिनकी देहकान्ति है, बाल चन्द्र अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा जिनके माथे का मुकुट है, जिनके हाथ में इक्षु (गन्ने) का धनुष है और जो शिव की प्राणशक्ति है, मैं उसका ध्यान करता हूँ।।१८६।।

विमर्श—'शिव की प्राण-शक्ति'—शाक्त-शास्त्रों का यह सुविचारित मत है कि ललितारूपिणी शक्ति के दम पर ही शिव का शिवत्व है। शक्ति के विना 'शिव' जी शव के समान प्राणहीन हैं। इसीलिये देवी ललिता को शिव की प्राणशक्ति कहा गया है।

रशनालसज्जघनया रसनाजीवातुचापभासुरया।
घ्राणायुष्करशरया घ्रातं चित्तं कयापि वासनया।। १८७।।

'रशना' अर्थात् मेखला या करधन। मणि-खचित मेखला से सुसज्जित जघन-मण्डल वाली जिस किसी परा शक्ति के रसभरे इक्षु-धनुष की शोभा अर्थात् मधुरता (मिठास) से (प्राणिमात्र की) रसना (जिह्वा) में मधुरता है और प्राणिमात्र के घ्राणेन्द्रिय (नाक) की प्राणशक्ति जिसके पुष्पमय बाणों के सौरभ से जीवन्त है, ललितारूपिणी वह परम ऐश्वर्यशालिनी परा शक्ति संस्कार के रूप में स्थित होकर मेरे चित्त को अभिभूत किये हुए है।।१८७।।

विमर्श—रसना (जिह्वा) और घ्राण (नाक) प्राणिमात्र की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अभिद्योतक हैं। मनुष्य की इन इन्द्रियों को कर्म करने और रसोपभोग करने की शक्ति भगवती ललिता से प्राप्त हुई है। मेखला या करधन कटि-प्रदेश का अभिव्यञ्जक है। 'कटि से लेकर जघन-मण्डल' के उल्लेख में योनि-मण्डल का उल्लेख भी अन्तर्निहित है। इससे यह ध्वनित होता है कि भगवती ललिता संसार मात्र की योनि-रूपा जनयित्री हैं और वे ही प्राणिमात्र के मन में अभिलाषाओं और कामनाओं (वासनाओं) का खेल रचाती हैं।

सरसिजसहयुध्वदृशा शम्पालतिकासनाभिविग्रहया।
भासा कयापि चेतो नासामणिशोभिवदनया भरितम्।। १८८।।

शोभा, सौन्दर्य, कान्ति, प्रफुल्लता एवं निर्मलता में जिसके नेत्र कमलों से प्रतिस्पर्धा करते हैं और जिसकी चमकीली देह-कान्ति विद्युत्-माला की सहोदरी (सगी बहिन) है और नाक में पहनी गई बुलाक की मणि से जिसका समस्त मुख-मण्डल देदीप्यमान है, ललितारूपिणी वह दिव्य ज्योति मेरे चित्त को आलोकित करे।।१८८।।

नवयावकाभसिचयान्वितया गजयानया दयापरया।
धृतयामिनीशकलया धिया कयापि क्षतामया हि वयम्।। १८९।।

नव-यावक अर्थात् अभी-अभी घोले गये महावर (आलता) के समान लाल रंग के वस्त्रों और आभूषणों से विभूषिता जिस गजगामिनी ने चन्द्रमा पर दया करके उसकी कला को अपने शिर:शोभा के रूप में धारण किया है, उस ललितारूपिणी पराशक्ति ने क्लेश, कर्म, विपाक और आशयरूप हमारे समस्त रोगों और विकारों का शमन कर दिया है।।१८९।।

विमर्श—'क्षतामया' अर्थात् 'क्षता: विनष्टा: आमया: क्लेशकर्मविपाकाशया:

रोगा: येषां ते तथाभूता वयम्' अर्थात् जिनका क्लेश-कर्म-विपाक और आशयरूप रोग (बन्धन) नष्ट (समाप्त) हो गया है—वैसे हम लोग। ललितारूपिणी वह परा शक्ति हमारे क्लेश-कर्म-विपाक और आशयरूप बन्धनों को समाप्त करके हमें बन्धनमुक्त कर दे। योग-दर्शन के अनुसार क्लेश-कर्म-विपाक और आशयरूप विकार-बन्धन ने ही ईश्वर-अंश आत्मा को जकड़कर बाँध रखा है। इन बन्धनों से मुक्त होते ही मनुष्य को ईश्वररूपता की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि इन बन्धनों से सर्वथा मुक्त पुरुषविशेष ही 'ईश्वर' है—'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुषविशेष ईश्वर:' (पातञ्जल योगसूत्र)।

'क्षतामया वयं' कहकर भगवान् दुर्वासा ने यह संकेत दिया है कि मनुष्य की आत्मा को सभी बन्धनों से मुक्ति प्रदान करके उसे उसके ललित आत्मारूप प्रदान करने की क्षमता केवल उन्हीं भगवती ललिता में है, जो स्वयं प्राणिमात्र में आत्मा के रूप में स्थित है—'ललिता वै आत्मा'।

अलमलमकुसुमबाणैरबिम्बशोणैरपुण्ड्रकोदण्डै:।
अकुमुदबान्धवचूडैरन्यैरिह जगति दैवतम्मन्यै:॥१९०॥

जिनके पास न तो पुष्पों के बाण हैं, न इक्षु (गन्ना)-मय धनुष है, न जिनकी देहकान्ति उदीयमान सूर्य अथवा बिम्बाफल के समान अरुण हैं और न जिनके भाल-प्रदेश में चन्द्रकला की कलगी है, ऐसे इन्द्र और उपेन्द्र आदि में देवता होने का जो अभिमान है, वह उनका मिथ्या अभिमान है, क्योंकि उनमें अपने भक्तों को भोग और मोक्ष प्रदान करने की स्वयं की क्षमता नहीं है। उनसे इन फलों की आशा करना व्यर्थ है॥१९०॥

विमर्श—इस पद्य (श्लोक) में एक विशेषता यह है कि इसमें भगवती ललिता के सभी प्रमुख लक्षण एक साथ गिना दिये गये हैं और यह बताया गया है कि पुष्प-बाण, इक्षुदण्ड, अरुण देहकान्ति और चन्द्र-कला की कलगी पुराणों में वर्णित इन्द्र आदि किसी भी एक देवता में एक साथ नहीं मिलते।

दूसरी बात यह कि इन्द्र आदि देवता अपने भक्तों को भोग-मोक्षरूप फल प्रदान नहीं कर सकते। वे भगवती से अपने-अपने भक्तों को उनका वांछित फल प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं और उनके अनुरोध पर भगवती उन देवताओं के भक्तों को वांछित फल प्रदान करती हैं, जैसा कि अन्यत्र भी कहा गया है।

कुवलयसदृक्षनयनै: कुलगिरिकूटस्थबन्धुकुचभारै:।
करुणास्पन्दिकटाक्षै: कवचितचित्तोऽस्मि कतिपयै: कुतुकै:॥१९१॥

मेरा हृदय उस कौतुकमयी ललितारूपिणी परा-शक्ति के आश्चर्यों से अभिभूत है, जिसके नयन कुवलय (नील कुमुद) के समान हैं, जिसके स्तनों का भार विन्ध्याचल आदि कुलपर्वतों के समान है और जिसके नेत्रों के कोर से दया और करुणा की सरिता बहती है॥१९१॥

नतजनसुलभाय नमो नालीकसनाभिलोचनाय नमः।
नन्दितगिरिशाय नमो महसे नवनीपपाटलाय नमः॥ १९२॥

शत-शत नमन ललितारूपिणी उस पराशक्ति को, जो भक्ति और श्रद्धा से अभिभूत जनों के लिये सहज ही प्राप्य है। शत-शत नमन ललितारूपा उस परा-शक्ति को, जिनके नेत्र कमल के सहोदर हैं, जिन्हें देखकर गिरीश अर्थात् कामेश्वर शिव आनन्दित हो जाते हैं और जिनकी देहकान्ति अभी-अभी खिले रक्त कदम्ब-पुष्प के समान कुछ-कुछ धवलता लिये हुए गुलावी है॥१९२॥

कादम्बकुसुमदाम्ने कायच्छायाकणायितार्यम्णे।
सीम्ने चिरन्तनगिरां भूम्ने कस्मैचिदाददे प्रणतिम्॥ १९३॥

मेरा शत-शत नमन ललितारूपिणी उस अपरिमित अनवच्छिन्न परा-शक्ति को, जिसके साकार विग्रह के गले में कदम्ब-कुसुमों की माला है, जिसके दहकते हुए तेज के सामने सूर्य की हैसियत आग की एक मामूली चिनगारी के समान है तथा जिसकी महिमा, गरिमा और तत्त्वरूप का गान निगम और आगम के लिये भी सम्भव नहीं है॥१९३॥

विमर्श—'सीम्ने चिरन्तनगिराम्' अर्थात् निगम और आगमरूपी चिरन्तन वाणी की गति ललितारूपी परब्रह्म के गुणगान की प्रारम्भिक सीमा तक ही है। वह उसके गुणगान के क्षेत्र में प्रविष्ट ही नहीं हो पाती और यदि किसी तरह प्रविष्ट भी हो जाय तो दूसरों को उसका तत्त्वरूप बताने के लिये वापस भी नहीं आ पाती—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम'।

कुटिलकबरीभरेभ्यः कुङ्कुमसब्रह्मचारिकिरणेभ्यः।
कूलङ्कषस्तनेभ्यः कुर्मः प्रणतिं कुलाद्रिकुतुकेभ्यः॥ १९४॥

घुँघराले बालों का जिसका जूड़ा है, वस्त्र और आभूषणों-सहित जिसकी देह-कान्ति अरुणाभ है तथा बार-बार टक्कर मारकर अपने तट को विस्तृत करने के लिये प्रयासरत सरिता के समान जिसका वक्षःस्थल है, मैं हिमालय की उस पुत्री को प्रणाम करता हूँ॥१९४॥

कोकनदशोणचरणात् कोमलकुरलालिविजितशैवालात्।
उत्पलसगन्धिनयनाद् उररीकुर्मो न देवतामन्याम्।।१९५।।

जिसके युगल-चरण रक्त-कमल के समान सुकोमल, सुन्दर और रक्त-वर्ण के हैं, जिसकी घुंघराली केश-राशि ने सञ्जालवत् अपनी सघनता से शैवाल (सेवार या कांई) को भी परास्त कर दिया है तथा जिसके नेत्र कमल के समान सुन्दर और सुडौल हैं, मैं उसे ही परा-शक्तिरूपी परा-देवता मानता हूँ। मेरी दृष्टि में इसके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं है।।१९५।।

आपाटलाधराणामानीलस्निग्धबर्बरकचानाम् ।
आम्नायजीवनानामाकूतानां हरस्य दासोऽहम्।।१९६।।

मैं परम-शिव की सृष्टि आदि कृत्य-पञ्चक की प्रेरणाभूता उस महादेवी ललिता का दास हूँ, जो निगम और आगम की प्राणस्वरूपा हैं तथा जिनके अधर अत्यन्त लाल तथा जिनकी केश-राशि बर्बरा से भी अधिक काली है।।१९६।।

विमर्श—१. बर्बरा—एक विशेष प्रकार की मक्खी जो अत्यंत श्याम वर्ण की होती है।

२. निगमागम की प्राण-स्वरूपा अर्थात् यदि इनमें ललिता (ब्रह्म) का निरूपण न हो तो इनका कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा।

पुङ्खितविलासहासस्फुरितासु पुराहिताङ्कनिलयासु।
मग्नं मनो मदीयं कास्वपि कामारिजीवनाडीषु।।१९७।।

सृष्टि आदि कृत्यपञ्चक के सम्पादकत्व के आनन्द से जनित ऐश्वर्यसूचक स्मित की रेखा पक्षी के प्रसृत पंखों की तरह जिसके अधर पर खेल रही है और त्रिपुरारि शिव का अङ्क (गोद) जिसका निलय है तथा जो शिव के शिवत्व की निर्वाहिका चिद्घन शक्तिस्वरूपा है, ऐसी ललितास्वरूपा परम-सत्ता के ध्यान में सदा मेरा मन डूबा रहता है।।१९७।।

ललिता पातु शिरो मे ललाटमम्बा च मधुमतीरूपा।
भ्रूयुग्मं च भवानी पुष्पशरा पातु लोचनद्वन्द्वम्।।१९८।।

पिछले श्लोकों में कामेश्वर शिव की प्राण-वल्लभा ललितारूपा परा-शक्ति के लोकोत्तर सौन्दर्य तथा महिमा का गुणगान करने के उपरान्त अब आठ श्लोकों में देवी ललिता की कवचात्मक स्तुति की गई है।

भगवान् शिव की ऐश्वर्यभूता तथा उनके शिवत्व की निर्वाहिका ललिता

नामक देवी मेरे शिर (ज्ञान) की रक्षा करे। मधुमती नाम की वही देवी मेरे ललाट (सौभाग्य) की रक्षा करे। उसी परा शक्ति का भवानी रूप मेरे भ्रू-युगलों (ध्यान-शक्ति) तथा पुष्पशरा रूप मेरे नेत्रों (दृष्टि) की रक्षा करे॥१९८॥

पायान्नासां बाला सुभगा दन्तांश्च सुन्दरी जिह्वाम्।
अधरोष्ठमादिशक्तिश्चक्रेशी पातु मे चिरं चिबुकम्॥ १९९॥

बाला मेरी नासिका की अर्थात् घ्राण-शक्ति की, सुभगा मेरे दन्तपंक्ति की, सुन्दरी जिह्वा (स्वाद और वाणी) की रक्षा करें। आद्या शक्ति मेरे होठों की तथा चक्रेशी मेरे चिबुक (ठुड्डी) की रक्षा करें॥१९९॥

कामेश्वरी च कर्णौ कामाक्षी पातु गण्डयोर्युगलम्।
शृङ्गारनायिकाव्याद् वदनं सिंहासनेश्वरी च गलम्॥ २००॥

कामेश्वरी मेरे दोनों कानों की, कामाक्षी मेरे गण्डस्थल की, शृंगारनायिका मेरे वदन (मुंह) की तथा सिंहासनेश्वरी मेरे गले की रक्षा करें॥२००॥

विमर्श—जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है कि वह परा-शक्ति एक ही है। वही एक परा-शक्ति विभिन्न प्रयोजनों के लिये नया रूप ग्रहण कर एक नया नाम ग्रहण करती है। उसके इन विभिन्न नामों का स्तवन करके हम वस्तुत: उस एक ही पराशक्ति का स्तवन करते हैं। कामेश्वरी, कामाक्षी, शृंगारनायिका, सिंहासनेश्वरी आदि उस एक पराशक्ति के ही नाम हैं, जो उसके कार्य या प्रयोजनविशेष के सम्पादन के लिये गृहीत स्वरूपों को द्योतक हैं।

कामेश्वरी—तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में परब्रह्मस्वरूप परमात्मा के बारे में कहा गया है—सोऽकामयत् बहुस्यां प्रजायेयेति'—उस परब्रह्म में प्रजा के रूप में एक से अनेक होने की कामना या इच्छा जाग्रत् हुई। इस तरह सृष्टि का मूल कारण 'काम' है। उपनिषदों के इसी ब्रह्म को शैव और शाक्त आगमों में 'शिव' कहा गया है। इस तरह इसका अर्थ यह हुआ कि 'शिव'रूप परम-सत्ता में प्रजा के रूप में सृष्टि उत्पन्न करने की कामना जाग्रत हुई। सृष्टि की कामना करने के कारण शिवरूप उस परम-सत्ता की संज्ञा 'कामेश्वर' हुई, लेकिन अपने शुद्ध बुद्ध स्वरूप में वह 'शिव' तो स्थाणु है—उसमें काम करने की इच्छा का भी अभाव है। उस 'स्थाणु' शिव को सृष्टि करने की प्रेरणा परा-शक्ति ने दी। परा-शक्ति ही सृष्टि की कामना के रूप में स्थाणु शिव में आविर्भूत हुई। इस अवस्था में उस परा-शक्ति की संज्ञा 'कामेश्वरी' हुई। सृष्टि उन्मुखी शिव के मदिर-नेत्रों से जब यह अभिव्यक्त होती है, तब उसे 'कामाक्षी' कहते हैं। शिव-शक्ति के सम्मिलन की अवस्था में परा-शक्ति

का जो रूप शिव के आनन्द (सम्मिलन आनन्द) का संवर्धन करती है, वह शृंगार-नायिका है। ब्रह्माण्ड की स्थिति अवस्था में जब वह सिंहासन पर बैठकर संसाररूपी कार्य का संचालन करती है, तो उसे 'सिंहासनेश्वरी' कहते हैं।

स्कन्दप्रसूश्च पातु स्कन्धौ बाहू च पाटलाङ्गी मे।
पाणी च पद्मनिलया पायादनिशं नखावलीर्विजया।। २०१।।

स्कन्द अर्थात् कार्तिकेय को जन्म देने वाली पार्वती मेरे स्कन्धों (कन्धों) की, पाटलाङ्गी अर्थात् पाटल (लाल गुलाब) वर्णी वही परा-शक्ति मेरी भुजाओं की, पद्म-निलया (कमल में निवास करने वाली) मेरे दोनों हाथों की तथा विजया मेरी नख-पंक्ति की रक्षा करे।।२०१।।

विमर्श—कन्धे से कोहनी तक का भाग भुजा (बांह) तथा कोहनी से अंगुलियों तक का भाग पाणि (हाथ) कहा जाता है।

कोदण्डिनी च वक्षः कुक्षिं चाव्यात् कुलाचलतनूजा।
कल्याणी च वलग्नं कटिं च पायात् कलाधरशिखण्डा।। २०२।।

कोदण्डिनी अर्थात् इक्षु का धनुष धारण करने वाली कामेश्वरी मेरे वक्ष:स्थल की रक्षा करे। कुलाचल अर्थात् हिमाचल की पुत्री अर्थात् गिरिजा मेरे कुक्षि (उदर) की तथा कल्याणी मेरे शरीर के मध्य भाग की और चन्द्रशेखरा मेरे कटि (कमर) की रक्षा करे।।२०२।।

विमर्श—'विलग्न' अर्थात् उदर से नीचे तथा कमर से ऊपर का भाग।

ऊरुद्वयं च पायादुमा मृडानी च जानुनी रक्षेत्।
जङ्घे च षोडशी मे पायात् पादौ च पाशसृणिहस्ता।। २०३।।

भगवती उमा मेरे दोनों उरुओं की, मृडानी मेरे दोनों घुटनों की, षोडशी मेरे जांघों की तथा पाश एवं अंकुशधारिणी देवी मेरे पैरों की रक्षा करें।।२०३।।

प्रातः पातु परा मां मध्याह्ने पातु मणिगृहाधीशा।
शर्वाण्यवतु च सायं पायाद्रात्रौ च भैरवी साक्षात्।। २०४।।

प्रात:काल में परा देवी (स्वरूपिणी कामेश्वरी ललिता), मध्याह्न काल में मणिसदनस्वामिनी, सायंकाल में शर्वाणी तथा रात्रि में भैरवी मेरी रक्षा करे।।२०४।।

विमर्श—विश्व का वमन या प्रकाशन करके जो उसका भरण-पोषण करे, वह भैरवी है।

भार्यां रक्षतु गौरी पायात् पुत्रांश्च बिन्दुगृहपीठा।
श्रीविद्या च यशो मे शीलं चाव्याच्चिरं महाराज्ञी।। २०५।।

देवी गौरी मेरी भार्या (पत्नि) की तथा श्रीचक्र के बिन्दुपीठ पर निवास करने वाली (ललिता देवी) मेरे पुत्रों की, भगवती श्रीविद्या मेरे यश की तथा महाराज्ञी मेरे सदाचरण और सद्भावों की रक्षा करें।।२०५।।

विमर्श—बिन्दुपीठ श्रीचक्र का सर्वोच्च पीठ है और बिन्दुचक्र में भगवती ललिता की पूजा की जाती है। अत: 'बिन्दुपीठगृहा' से तात्पर्य है—भगवती ललिता।

शील अर्थात् सदाचार और सद्भाव। धन-सम्पत्ति, स्वास्थ्य और शारीरिक बल के साथ ही जीवन की सार्थकता के लिये अच्छा आचार-विचार भी आवश्यक है। अत: भगवती ललिता से सदाचार और सद्विचारों की रक्षा के लिये प्रार्थना की गई है।

कवच-स्तवन के प्रसंग में यह बात ध्यातव्य है कि उसमें (कवच में) इष्ट-देवता से विभिन्न अंगों की रक्षा करने की जो प्रार्थना की गई है, उसका आशय तत्-तत् अंग में निहित कार्य-शक्ति की भी रक्षा से है। यह देखा गया तथ्य है कि अनेक व्यक्ति अंगविशेष के होने पर भी शक्ति के अभाव में उस अंग से काम नहीं ले पाते; अत: उस अंग के साथ उस अंग में निहित कार्य-शक्ति की रक्षा भी आवश्यक है।

पवनमयि पावकमयि क्षोणीमयि गगनमयि कृपीटमयि।
रविमयि शशिमयि दिङ्मयि समयमयि प्राणमयि शिवे पाहि।। २०६।।

'शिवे' अर्थात् शिव की शक्ति—'शिवा'। हे शिवे! हे कल्याणि! आप ही वायुरूप, अग्निरूप, पृथ्वीरूप, आकाशरूप तथा जलरूप अर्थात् पञ्चभूतरूप हो। सूर्य, चन्द्र, दिशायें, काल एवं समस्त प्राणियों के जीवन का आधारभूत प्राणतत्त्व (जीवन-शक्ति) भी तुम ही हो। विधि और निषेध के नियामक शास्त्र भी तुम्हारे ही रूप हैं। हे भगवति! हे कल्याणि! अपने इन सभी रूपों से आप हमारी रक्षा करें।।२०६

कालि कपालिनि शूलिनि भैरवि मातङ्गि पञ्चमि त्रिपुरे।
वाग्देवि विन्ध्यवासिनि बाले भुवनेशि पालय चिरं माम्।। २०७।।

हे देवि! काली, कपालिनी, शूलिनी, भैरवी, मातङ्गी, पञ्चमी, त्रिपुरा, वाग्देवी, विंध्यवासिनी, बाला तथा भुवनेश्वरी आदि आपके ही स्वरूप और आपके ही नाम हैं। हे माते! आपकी ये सभी मूर्तियाँ सदा मेरी रक्षा करें।।२०७।।

अभिनवसिन्दूराभामम्ब त्वां चिन्तयन्ति ये हृदये।
उपरि निपतन्ति तेषामुत्पलनयनाकटाक्षकल्लोलाः ।। २०८ ।।

हे माते! आपके जो भक्त अपने हृदय में पूर्ण मनोयोग और तल्लीनता से आपके सिन्दूरी सौन्दर्य का ध्यान करते हैं, 'यद् ध्यानं तद् रूपं भृङ्गवत्' न्याय के अनुसार तुम्हारे ही समान सौन्दर्यशाली और आकर्षक हो जाते हैं और इस कारण विश्व की समस्त कमलनयना प्रमदाओं की उन पर दृष्टि पड़ने लगती है अर्थात् वे सभी स्त्रियों के मनों का हरण कर लेते हैं।।२०८।।

विमर्श—इस श्लोक से प्रारम्भ कर पाँच श्लोकों में देवी ललिता की आराधना के विभिन्न लौकिक फलों का निरूपण किया गया है।

वर्गाष्टकमिलिताभिर्वशिनीमुख्याभिरावृतां भवतीम्।
चिन्तयतां सितवर्णां वाचो निर्यान्त्ययत्नतो वदनात्।। २०९ ।।

हे माते! आपके जो भक्तजन वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं से आवृता (घिरी हुई) आपकी श्वेत-वर्ण मूर्ति का ध्यान करते हैं, उनके मुँह से बिना प्रयास के स्वाभाविक रूप से काव्यधारा फूटने लगती है। वे बिना किसी अभ्यास के दिव्य कवि बन जाते हैं।।२०९।।

कनकशलाकागौरीं कर्णव्यालोलकुण्डलद्वितयाम्।
प्रहसितमुखीं च भवतीं ध्यायन्तो ये त एव भूधनदाः ।। २१० ।।

हे माते! आपके जो भक्त आपकी तप्तस्वर्णशलाकावत् चमचमाती हुई स्मितमुखी तथा कर्ण-कुण्डलभूषिता दिव्य मूर्ति का ध्यान करते हैं, वे संसार में कुबेर के समान धनपति हो जाते हैं।।२१०।।

शीर्षाम्भोरुहमध्ये शीतलपीयूषवर्षिणीं भवतीम्।
अनुदिनमनुचिन्तयतामायुष्यं भवति पुष्कलमवन्याम्।। २११ ।।

भगवती ललिता के जो भक्त अपने सहस्रार में प्रतिदिन निरन्तर भगवती ललिता की शीतल अमृतवर्षिणी मूर्ति का ध्यान करते हैं, उन्हें चिर अर्थात् दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है।।२११।।

मधुरस्मितां मदारुणनयनां मातङ्गकुम्भवक्षौजाम्।
चन्द्रावतंसिनीं त्वां सविधे पश्यन्ति सुकृतिनः केचित्।। २१२ ।।

हे देवि! आपकी मधुरस्मिता, मदारुणनयना, मातङ्गकुम्भवक्षौजा, चन्द्रावतंसिनी

मूर्ति के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य आपके किसी-किसी अत्यन्त पुण्यशील साधक को ही मिलता है॥२१२॥

विमर्श—मधुरस्मिता अर्थात् मधुर मुस्कान वाली। 'मदारुणनयना' अर्थात् जिसके नेत्र मद के प्रभाव से रतनारे हो गये हैं। मातङ्गकुम्भवक्षौजा अर्थात् जिसका स्तनमण्डल हाथी के सिर के समान गोल और समुन्नत है। चन्द्रावतंसिनी अर्थात् चन्द्रमा ही जिसका अवतंस (कानों का बाली) है।

ललितायाः स्तवरत्नं ललितपदाभिः प्रणीतमार्याभिः।
प्रतिदिनमवनौ पठतां फलानि वक्तुं प्रगल्भते सैव॥२१३॥

अनुप्रास आदि अलंकारों तथा श्रुति-माधुर्ययुक्त आर्या छन्दों में निबन्धित भगवती ललिता के इस स्तवरत्न का प्रतिदिन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पाठ करने से ललिता-भक्तों को उनके जीवनकाल में ही चारों पुरुषार्थ-सहित मिलने वाले पुण्य-फलों का निरूपण करने की क्षमता केवल भगवती ललिता में है। इनका निरूपण कर पाना मेरे जैसे सामान्य कवि के बस की बात नहीं है॥२१३॥

विमर्श—'ललितपदाभिः' अर्थात् ललित पदों से। ऐसे पद, जो अनुप्रास आदि अलंकारों से युक्त हों तथा जिनमें 'ट'कार, 'ठ'कार, 'ड'कार, 'ढ'कार, 'क्ष'कार आदि जैसे परुष वर्णों का प्रयोग नहीं हो, वे ललित पद माने जाते हैं।

आर्या छन्द—इसमें सात गण होते हैं। यहाँ 'गण' शब्द से वर्णत्रयात्मक जगण आदि का ग्रहण नहीं होता, अपितु चतुष्कलात्मक गणों का ग्रहण होता है। इसके विषम गणों में अर्थात् प्रथम, तृतीय, पञ्चम और सप्तम गणों में जगण नहीं होता। अंत में गुरु होता है। इस छन्द में छठा गण या तो जगण हो अथवा नगण और एक लघु हो।

षष्ठ गण में चारो लघुवर्ण होने पर दूसरे लघु से पूर्व यति होती है और सातवें गण में चारो लघु वर्ण होने पर प्रथम लघु से पूर्व यति होती है। शेषार्ध में षष्ठ गण केवल लघु वर्णात्मक होता है तथा पाँचवें गण के चर्तुलघु वर्णात्मक होने पर प्रथम लघु से पूर्व यति होती है। पथ्या, विपुला, चपला, मुखचपला, जघनचपला, गीति उपगीति, आर्यागीति और उद्गीति—ये ९ (नौ) भेद होते हैं। (छन्दोमञ्जरी)

सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान्।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः॥२१४॥

इति श्रीभगवता दुर्वाससा विरचितं ललितास्तवरत्नं समाप्तम्

सज्जन पुरुषों पर अनुग्रह करने तथा असद् अर्थात् दुष्ट पुरुषों पर नियंत्रण करने के लिये मुनिशरीर ग्रहण करके पृथ्वी पर अवतरित सभी उपनिषदों अर्थात् मोक्ष-विधायिनी रहस्यविद्याओं के पुरा-प्रवक्ता या उपदेशक देशिकश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासा की जय हो॥२१४॥

विमर्श—तन्त्रशास्त्र के चूडान्त विद्वान् और सिद्ध तन्त्रसाधक को देशिक कहते हैं।

'सर्वासामुदनिषदां प्रथम: देशिक:' का एक अर्थ यह भी हो सकता है—'सभी रहस्यमयी विद्याओं के प्रथम उपदेशक अर्थात् भगवान् शिव। अत: इस श्लोक का यह अर्थ भी हो सकता है—'मुनि का शरीर ग्रहण करके दुर्वासा के रूप में पृथ्वी पर अवतरित रहस्यविद्याओं के प्रथम उपदेशक भगवान् शिव की जय हो।'

भगवान् दुर्वासा-प्रणीत 'ललितास्तवररत्न' की 'पूर्णिमा'
हिन्दीटीका पूर्ण हुई

★

श्रीदुर्वाससा विरचितं

त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

नित्यानन्दविरचितव्याख्यासहित'पूर्णिमा'हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

श्रीदुर्वाससा विरचितं

त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

नित्यानन्दविरचितव्याख्यासहित'पूर्णिमा'हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवि त्रिलोकीमहा-
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्।। १ ।।

श्रीश्रीविद्यानन्दनाथाङ्घ्रियुग्मं स्मृत्वा स्वान्तध्वान्तभानुप्रभावम्
सर्वोत्कृष्टं क्रोधभट्टारकोक्तं स्तोत्रं श्रीमत्सुन्दरीश्रीमहिम्नः।
पूर्वं कैश्चिद् व्याकृतं नेति भीतो गूढार्थत्वादल्पबुद्धिस्तथापि
शिष्टैरिष्टैरीरितोऽहं गुरूक्त्या नित्यानन्दः सादरं व्याकरोमि।।
न शब्दशास्त्रव्युत्पत्तिर्न न्यायनिपुणा मतिः।
केवलं गुरुपादाब्जस्मृतिरत्र गतिप्रदा।।
त्रैलोक्यवन्द्यं गिरिजाभिनन्द्यं विज्ञानगम्यं वरदं वरेण्यम्।
विघ्नौघभङ्गाय च कार्यसिद्ध्यै विश्वेश्वरं विश्वगुरुं नमामि।।
कुलारविन्दादकुलारविन्दं गत्वाऽमृतौघैरनुषिच्यमानाम्।
रसारविन्दानि निजारविन्दे पुनः प्रयान्तीं प्रभजे परेशीम्।।

इह खलु सकलागमाचार्यचक्रवर्ती साक्षाच्छिव एवाऽनसूयागर्भसम्भूतः क्रोधभट्टारकाख्यदुर्वासामहामुनिः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सानुभावं महिम्नस्तोत्रं चिकीर्षुरादौ कूटत्रयदेवताभावनारूपं मङ्गलमाचरति—**श्रीमातरिति।** हे श्रीमातः! ते वपुर्मे स्वान्ते स्फुरतु। कथंभूतं वपुः? उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभम्। पुनः कीदृशम्? त्रिलोकीमहासौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्, त्रिलोकनिलयम्, ज्योतिर्मयम्, वाङ्मयं चेत्यन्वयः। हे श्रीमातर्हे श्रीजननि! हे त्रिपुरे त्रितयमात्ररूपे! परात्परतरे सूक्ष्मात्मसूक्ष्मे। देवि दिव्यक्रीडारसपरे। त्रिलोकीमहासौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधा-प्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्, त्रिलोकी त्रयाणां लोकानां समाहारस्तस्या महासौन्दर्यमेवार्ण-वस्तन्मन्थनोद्भवायाः सुधायाः प्राचुर्यस्य यो वर्णोऽत्युज्ज्वलत्वं तद्वत्, इत्यनेन

वाग्भवकूटदेवताभावना प्रतिपादिता। उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभम् उद्यद्भानवो बालार्कास्तेषां सहस्राणि नूतनजपापुष्पाणि च अनुदितसूर्यकालीनी जपापुष्पाणि च तेषां प्रभेव प्रभा यस्य, इत्यनेन कामराजकूटदेवताभावना प्रतिपादिता। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः वपुः स्वरूपम्। स्वान्ते हृदये। मे उपासकस्य। स्फुरतु भावनागोचरं भवतु। त्रिकोकनिलयं त्रिलोकं नितरां लीयते यस्मिन्, यच्छायायां मग्नं भवति। अथवा त्रिलोकस्य निलयमुत्पत्तिस्थानं कामकलारूपम्। वामकेश्वरतन्त्रादौ कामकलाक्षरादेव सृष्ट्यादेरुक्तत्वात्। एतद्विवरणं कामराजकूटप्रभाववर्णने षष्ठश्लोके वक्ष्यति च। ज्योतिर्मयं ज्योतींषि सूर्याग्निसोमादीनि तन्मयम्। वाङ्मयं परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपम्। तृतीयकूटस्य सौभाग्यप्रदत्वाज्ज्योतिर्मयत्वं सारस्वतत्वाद्वाङ्मयत्वं च, ज्योतिषः सामयजुःशुक्ल-भास्वरत्वात्। अनेन तृतीयकूटभावना प्रतिपादिता। एवं महात्रिपुरसुन्दरीरूपस्य त्रिविधभावनयाऽवश्यं सौभाग्यं वाक्प्रदत्वं प्रतिपादितम्। अतः परं विद्योद्धारपक्षे व्याख्यानम्। तत्र श्री श्रीबीजम्, मा मायाबीजम्, अतोऽतः परं त्रिपुरा त्रिबीजवती। बालाद्वयं तु सम्प्रदायबलात् अन्तर्मुखैरेव ज्ञेयम्। ई प्रणवः। एतद्विवरणमष्टमश्लोकव्याख्याने स्फुटीभविष्यति। परात् मायाबीजात् परतरा लक्ष्मीः श्रीबीजं देवीति सम्बुद्धिः। त्रिलोकी त्रिकूटा तस्यास्त्रितयमात्ररूपतया कूटत्रयेण लोकत्रयव्यापकता प्रसिद्धैव सौन्दर्यपदेन बालायास्तृतीयं कूटमुट्टङ्कितम्। अर्णवोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलमिति पदेन बालायाः वाग्भवत्वं सूचितम्, तस्यामृतमयत्वेन वाक्प्रदत्वात्। उद्यदादिपदेन बालायाः कामकूटत्वं सम्भावितम्, तस्य सिन्दूरवर्णत्वेन वश्यप्रदत्वात्। ते वपुरित्यनेन मायाबीजं स्वान्ते स्वस्या विद्याया अन्ते मे इत्यत्र माशब्देन श्रीबीजम्, ईशब्दः कामकलावाचकः। एवं रूपं महाविद्याश्रीषोडशाक्षरीस्वरूपं साधकस्य हृदये स्फुरत्विति। इदं सर्वथैव गोप्यमपि मया सांकेतिकशब्दैः शिष्टानां साधकानां परितोषार्थं प्रकटीकृतम्।।१।।

पूर्वपीठिका—ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि अत्रि की धर्मपत्नी देवी अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न देशिकेन्द्र दुर्वासा-विरचित इस त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र का शाक्त (श्रीविद्या) सम्प्रदाय में वही महत्त्व है, जो महत्त्व पुष्पदन्त-विरचित 'शिवमहिम्न स्तोत्र' का शैव सम्प्रदाय में है। मङ्गल-वाचक 'श्री' शब्द से प्रारम्भ इस प्रथम श्लोक में सकलागमाचार्य देशिकेन्द्र दुर्वासा भगवती त्रिपुरसुन्दरी के गौरवपूर्ण महिम्नस्तोत्र की रचना करने की मङ्गलमयी आकांक्षा से कूटत्रय देवता-स्वरूपिणी भगवती त्रिपुरा की कृपा पाने के लिये उनकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

पूर्णिमा—हे माते त्रिपुरे! आपका वह दिव्य विग्रह सदा मेरे अन्तःकरण (हृदय) में प्रकाशित होता रहे, जो तीनों लोकों में परिव्याप्त अनन्त सौन्दर्य-सागर के मन्थन से उद्भूत अमृत से भी अधिक उज्ज्वल है, जिसकी आभा (कान्ति) हजारों प्रातःकालीन सूर्यों तथा सद्यः विकसित जपा-पुष्पों से भी अधिक अरुणाभ है,

जो तीनों लोकों की सृष्टि-स्थिति तथा लय का अधिष्ठान है, जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी-स्वरूप होने के कारण समस्त वेद, पुराण, दर्शन, इतिहास, स्मृति आदि वाङ्मय का प्रकाशक तथा समस्त लौकिक भाषाओं का उत्स तथा सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि-सहित सभी प्रकाश-पुञ्जों का अक्षय स्रोत है।।१।।

विमर्श—इस प्रथम श्लोक में त्र्यक्षरी बाला विद्या और षोडक्षाक्षरी षोडशी श्रीविद्या की उद्‌भावना की गई है। 'ऐं क्लीं सौ:' यह त्र्यक्षरी बाला विद्या है। इनमें से प्रथम अक्षर 'ऐं' का वर्ण चन्द्रमा के समान धवल है। द्वितीय कूट 'क्लीं' का वर्ण बीरबहूटी की तरह लाल और तृतीय 'सौ:' का वर्ण सोने के समान है।

इस श्लोक में 'त्रिलोकी महासौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भव' 'सुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलाम्' से बाला विद्या के प्रथम कूट 'ऐं' की उद्‌भावना की गई है, जिसे ज्ञानार्णव-तन्त्र (२/११) में 'वाग्भवेन्दुमहसा वागीशत्वप्रदायिनी' से निरूपित किया गया है। चन्द्रमा के समान श्वेत और धवल इस कूट (ऐं) को वाग्भवकूट कहे जाने के रहस्य का प्रतिपादन करते हुए ज्ञानार्णव (पटल १३) में कहा गया है—

> नि:सरन्ति महामन्त्रा: विस्फुलिङ्गा: यथा प्रिये।।४४।।
> वह्ने: सकाशाद्बहवो विद्याऽस्तु बहवस्तथा।
> वाग्भवात्तु समुत्पन्नास्तस्माद्वाग्भवमुच्यते।।४५।।
> मातृकार्णास्तथा भद्रे वाग्भवान्निसृता: क्रमात्।
> अतएव महेशानि! शब्दब्रह्ममयी प्रिये।।४६।।

जिस तरह आग से लाखों चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी तरह सभी मन्त्रों, विद्याओं तथा मातृकाओं की उत्पत्ति इस 'ऐं' बीज से हुई है। अत: इसे वाग्भव बीज कहा जाता है। यह वाग्भव बीज विश्व की समस्त ज्ञानराशि का समुच्चय है। इससे तीनों वेदों का उद्भव हुआ है। इस 'ऐ'कार में तीन वर्ण हैं—'अ'कार, 'इ'कार और पुन: 'अ'कार।

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र (अग्निमीडे पुरोहितम्) के प्रथम वर्ण 'अ'कार की यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र (इषे त्वोर्जे०) के प्रथम अक्षर 'इ' की सन्धि हुई तो (अ+इ) 'ए'कार व्युत्पन्न हुआ। पुन: इस 'ए'कार की सामवेद के प्रथम मन्त्र (अग्न आयाहि वीतये०) के प्रथम वर्ण 'अ' से सन्धि हुई तो 'ए+अ' से 'ऐ'कार की व्युत्पत्ति हुई। इस तरह 'अ'कार, 'इ'कार और 'अ'कार से प्रारम्भ होने वाले तीनों वेदों की उत्पत्ति इस वाग्भव बीज से हुई है। इसीलिये भगवती त्रिपुरा का एक नाम वेदजननी है (देखें ललितासहस्रनाम—नामसंख्या ३३८)।

'इस श्लोक में' 'उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभ' तथा 'त्रिलोकनिलयम्' से बाला विद्या के द्वितीय कूट 'क्लीं' की उद्भावना की गई है, जिसका वर्ण इन्द्रगोप (बांरबहूटी) के समान सुर्ख लाल है और जिसके कामकला अक्षरों से संसार की उत्पत्ति हुई है। इसकी विशद् विवेचना यथा-अवसर आगे की जायेगी।

'ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्' से बाला विद्या के तृतीय कूट (सौः) की उद्भावना की गई है। जो सोने के समान चमकदार और सर्वसौभाग्यदायक है—'स्फुरत् सुवर्ण-वर्णेन सौभाग्यं तस्य मन्दिरे' (ज्ञानार्णव २/१२)। शक्ति का ज्ञापक होने के कारण यह बीज वागीशत्व-दायक भी है।

श्रीविद्या की उद्भावना—ज्ञानार्णवतन्त्र (पटल १३ श्लोक २७-२८) के अनुसार भगवती श्रीविद्या का षोडशाक्षरी मन्त्र है—'श्रीं ह्री क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएइलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं।

इस श्लोक में उपर्युक्त षोडशाक्षरी श्रीविद्या की भी उद्भावना की गई है। यथा—'श्रीमते त्रिपुरे'—श्री अर्थात् 'श्रीं'। 'मा' अर्थात् मायाबीज—'ह्रीं'। 'तः' अर्थात् 'ह्रीं' के बाद त्रिपुरा अर्थात् बाला विद्या के तीन कूट—क्लीं ऐं सौः।

त्रिपुरा = 'त्रिपुरा+ई' अर्थात् बाला विद्या के बाद 'ई' अर्थात् प्रणव (ॐ)।

परात्परे=मायाबीज (ह्रीं) के बाद श्री (श्रीं) बीज। मायाबीज और श्रीबीज के बाद त्रिलोकी अर्थात् पञ्चदशाक्षरी विद्या के तीनों कूट (कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं)।

'सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भव'—इस पंक्ति के 'सौन्दर्य' से बाला विद्या के तृतीय कूट (सौः) की तथा 'अर्णवोद्...' से बाला विद्या के प्रथमकूट (ऐं) की और 'उद्यद्भानुसहस्र...' से बाला विद्या के द्वितीय कूट (क्लीं) की उद्भावना की गई है। तात्पर्य यह कि पञ्चदशी के तीनों कूटों के बाद बाला विद्या के कूटत्रय (सौः ऐं क्लीं)।

'ते वपुः'—आपका शरीर। 'ह्रीं'कार भगवती ललिता का वर्णविग्रह है।

''स्वान्ते मे'—मायाबीज (ह्रीं) के बाद 'मे'। इस 'मे' पद में दो अक्षर हैं—'मा' और 'ई'। 'मा' का अर्थ है—श्रीबीज (श्रीं) तथा 'ई' अर्थात् कामकला अक्षर 'क्लीं'।

इस तरह 'श्रीमातस्त्रिपुरे......स्वान्ते मे' से सम्पूर्ण षोडशाक्षरी मन्त्र की उद्भावना की गई है।

देशिकेन्द्र दुर्वासा प्रार्थना करते हैं कि यह षोडशाक्षरी विद्या मेरे अर्थात् साधक के हृदय में ज्योतित और स्फुटित होती रहे।

'त्रिपुरा' पद की व्याख्या—विभिन्न तन्त्रग्रन्थों में त्रिपुरा पद की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की गई है। 'ज्ञानार्णव तन्त्र' में कहा गया है—

बिन्दुत्रयसमायोगात् त्रिपुरा नाम रूपिणी।। (१/२७)

सम्पूर्ण प्राणि-जगत् सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि (रचना), स्थिति (पालन) और संहार (प्रलय) करने वाली त्रिबिन्दुरूपिणी वामा (ब्राह्मी), ज्येष्ठा (वैष्णवी) तथा रौद्री (माहेश्वरी) शक्तियों की जो समायोगात्मिका समष्टि मूर्ति है, उसका नाम त्रिपुरा है। 'सुन्दरीस्तव' में भी कहा गया है—

ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्र एव हि।
पुरं शरीरं यस्या सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता।।

'मन्त्रशास्त्र' में कहा गया है—जो त्रिमूर्ति (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) के जन्म (आविर्भाव) के पूर्व भी विद्यमान थी, जो वेदत्रयी के पूर्व भी विद्यमान थी, जो स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालरूप त्रिलोक का लय हो जाने के बाद उन्हें पूर्ववत् बना देती हैं, वे त्रिपुरा हैं।

'त्रिपुरा' पद में 'त्रि' (तीन) संख्यावाचक विशेषण है तथा 'पुर' विशेष्य है। पुर का अर्थ है—नगर, गेह, देह आदि। अतः 'पुर' के वाचक सभी पद, जो तीन-तीन विशेषणों अथवा विभूतियों से विभूषित हों, वे सभी 'त्रिपुर' में समाहित हैं, यथा—

त्रि अग्नि (गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीय अग्नि), त्रिज्योति (हृदयज्योति, ललाटज्योति तथा शिरोज्योति), त्रि-स्वर (उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित्) त्रिलोक (स्वर्ग-पृथ्वी-पाताल), त्रि-पीठ (जालन्धर-कामरूप तथा उड्डियाण), त्रिपदा गायत्री, त्रिकूट (वाग्भव-कामराज एवं तार्तीय) इत्यादि।

इसी विशेषण-विशेष्यभाव को लक्षित करके 'कालिकापुराण' में कहा गया है—

त्रिकोणं मण्डलं यस्या भूपुरञ्च त्रिरेखात्मकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरा प्रोक्ता तथा रूपं त्रयं पुनः।।
त्रिविद्या कुण्डलीशक्तिः त्रिदेवानां च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात् तु त्रिपुरा मता।।

जिनका पूजन-मण्डल त्रिकोणाकार है, पूजन-मण्डल के भूपुर में तीन रेखायें हैं, जिनका मन्त्र भी तीन अक्षरों (कूटों) का है, जिनके रूप भी तीन हैं—(यथा—बाला, भैरवी तथा महात्रिपुरसुन्दरी), जो त्रिवलया कुण्डलिनी के रूप में प्राणिमात्र में विराजिता हैं, जिन्होंने सृष्टि कार्य के लिये त्रिदेवों का आविर्भाव किया, जिनके सभी रूप तीन-तीन रूपों वाले हैं, वे भगवती त्रिपुरा हैं। अगले श्लोक में उनकी चिद्रूपिणी कुण्डलिनी मूर्ति की स्तुति की गई है।

आदिक्षान्तसमस्तवर्णसुमणिप्रोते वितानप्रभे
ब्रह्मादिप्रतिमाभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते।
ब्रह्माण्डाब्जमहासने जननि ते मूर्तिं भजे चिन्मयीं
सौषुम्णायतपीतपङ्कजमहामध्यत्रिकोणस्थिताम्।। २।।

इदानीं मूलाधारचक्रस्थितां सकलविद्यामन्त्रचक्रकारणभूतां मूलाधारादिचक्रविभेदेन क्रमेण सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्महामध्यत्रिकोणसिंहासननिविष्टां चिद्रूपिणीं प्रस्तौति— **आदीति।**

हे जननि! सौषुम्णायतपीतपङ्कजमहामध्यत्रिकोणस्थितां ते मूर्तिं ब्रह्माण्डाब्ज-महासनेऽहं भजे इत्यन्वयः। आदिक्षान्तसमस्तवर्णसुमणिप्रोते आदयोऽकारादयः क्षान्ताः क्षकारान्ताः समस्ताः पञ्चाशद्वर्णाः स्वरव्यञ्जनात्मकास्त एव सुमणयो मुक्ताफलप्रायास्ते प्रोता गुम्फिता यस्मिन्। वितानप्रभे वितानवत्प्रभा शोभा यस्य, अत्युज्ज्वलत्वादति-विस्तृतत्वाच्च। ब्रह्मादिप्रतिमाभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते ब्रह्मादिप्रतिमाभिरभिकीलिता मण्डिताः षडाधाराणां षोडशदलद्विदलान्तचक्राणां कक्षाः कर्णिकारूपमध्यप्रदेशास्तत्रोन्नते। ब्रह्माण्डाब्जमहासने ब्रह्माण्डं ब्रह्मरन्ध्रस्थानं तत्राब्जं नाम सहस्रदलं कमलं तत्र महासनं तदन्तर्गतकर्णिकामध्यवर्ति महात्रिकोणं तदेव महासनं तस्मिन्। मूर्तिं कुण्डलिनीरूपां चिन्मयीं ज्ञानात्मिकां सौषुम्णायतपीतपङ्कजमहा-मध्यत्रिकोणस्थितां सौषुम्णं सुषुम्णासंवन्धि आयतं विस्तृतं पीतं हरिद्राभं पङ्कजं कमलं तस्मिन् महामध्यं कर्णिकास्थानं तत्र त्रिकोणमकथादिवर्णमयत्रिरेखं तत्र स्थितां तत्रत्यविन्दुरूपस्वयम्भूलिङ्गं परिवेष्ट्य सार्धत्रिवलयेन भुजगीमिव सुप्तामिति। समस्तवर्णसुमणिप्रोत इति। कोऽर्थः? ब्रह्माण्डाब्जमहासनं नाम सहस्रदलं कमलं तस्य नालरूपा सुषुम्णानाडी मूलाधार-चतुर्दलकमलान्तर्गतं त्रिकोणं कन्दरूपं षडाधारकमलपत्रेषु ते पञ्चाशद्वर्णाः स्थूल-वर्णकारणभूता देहे प्राणप्रवेशावधि प्राणनिर्गमनकालपर्यन्तं सर्वदैव मणिवत्कीलित-प्रायास्तिष्ठन्तीत्यर्थः। साम्प्रदायिकैर्यदान्तर्मालया जपः क्रियते तदा सुषुम्णां सूत्रस्थाने परिभाव्यैकपञ्चाशन्मातृकावर्णान् मणीन् विभाव्य मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तमका-रादिक्षकारान्तं मनसा प्रजप्य पुनः क्षकारमारभ्य ब्रह्मरन्ध्रान्मूलाधारपर्यन्तं च प्रजप्य शतसंख्या समाप्यते, (ते) न विद्या वीर्यवती भवतीति। इदं परमरहस्यं गुह्याद् गुह्यं शिष्टानां साधकानां परितोषार्थमत्र लिखितं गुरुभिः क्षन्तव्यम्। यथाश्रुतोऽर्थस्तु मुनीनां योगीश्वराणां संभवत्येव। यदा योगाग्निना परिप्लुष्टानना कुण्डलिनी शक्तिर्मूलाधारादधोग-तत्रिकोणादुत्थाय षडाधारभेदेन क्रमेण सुषुम्णारन्ध्रद्वारा सहस्रदलकमलं प्राप्य परिभ्रमति, तदा तदन्तर्गतचिच्चन्द्रमण्डलस्राविताम‍ृतबिन्दुरूपमातृकाक्षराणि सुषुम्णाख्यब्रह्मसूत्रद्वारा तत्तदाधारगततत्तद्देवताभिषेकपूर्वकमूलाधारत्रिकोणपर्यन्तं निरन्तरं परिगलन्ती तस्मिन्

काले सहस्रदलकमलरूपवितानमध्यगतसुषुम्णाब्रह्मसूत्रे मुक्तामणिप्रोतस्रग्रूपता भातीति। षडाधारवर्णनं तत्तच्चक्रे चित्तनिवेशनफलं चोक्तं नागभट्टैः—'अथाधारपङ्केरुहाण्यत्र वक्ष्ये सुषुम्णान्तरस्थानि संक्षेपतोऽहम्' इत्यादि 'पुनरुत्थापनमप्य-योमृतस्य' इत्यन्तं त्रिपुरासारे पञ्चमपटलस्यादितो द्रष्टव्यमिति।।२।

पूर्णिमा—हे माता! मूलाधार कमल में सुषुम्णारूपी पीत कमल के मध्यवर्ती अकथादि त्रिकोण पर बिन्दुरूप स्वयम्भू लिंग को साढ़े तीन वलयों से घेरकर नागिन के समान सोई रहने वाली आपकी कुण्डलिनीरूपा चिन्मयी मूर्ति का मैं सहस्रार मण्डल की कर्णिका के मध्यवर्ती महा आसनरूप उस महात्रिकोण में ध्यान करता हूँ, जो षडाधाररूपी मूलाधार आदि चक्रों में प्रतिष्ठित ब्रह्म आदि देवमूर्तियों से समुन्नत ब्रह्मरन्ध्र पर स्थित है और जिस पर 'अ'कारादि 'क्ष'कारान्त पञ्चाशत् (५०) मातृकारूपी मुक्तामणियों से खचित अत्यन्त धवल और समुज्ज्वल वितान तना है।।२।।

विमर्श—हमारे शिरोप्रदेश में सबसे ऊपर ब्रह्माण्ड में सहस्रदल कमल है। सुषुम्णा नाड़ी इस सहस्रदल कमल की नाल है। इसके ऊपरी सिरे पर सहस्रदल कमल है और इसका दूसरा अर्थात् नीचे वाला सिरा गुह्य प्रदेशवर्ती मूलाधार चक्र के अन्तःस्थ त्रिकोणरूपी कन्द पर टिका हुआ है। इस सहस्रदल कमल को महा-आसन कहा गया है। सुषुम्णा नाड़ी ठोस नहीं है, अपितु अन्दर से पोली है। इसके अन्दरूनी भाग का रंग पीला है। इसी सुषुम्णा नाडी में गुह्य प्रदेश से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त व्याप्त अवकाश में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञासंज्ञक छः चक्र या कमल हैं। इन कमलों में यथाक्रम ब्रह्मा आदि देवताओं का वास है। इनके दलों की कुल संख्या ५० (पचास) है, जिन पर 'अ'कार से 'क्ष'-पर्यन्त पचास वर्ण एक-एक कर मणियों की तरह जड़े हुए हैं। साम्प्रदायिक साधक इन वर्णों को सुषुम्णा सूत्र में गुथी हुई माला मानकर 'अ'कार से प्रारम्भ करके 'क्ष'कार-पर्यन्त तथा विलोम-क्रम में 'क्ष'कार से प्रारम्भ कर 'अ'कार-पर्यन्त प्रत्येक मातृका के साथ अपने इष्ट मन्त्र का योग करके जप करते हैं। इस विधि से जप करने से उनका इष्ट मन्त्र अत्यन्त बलवान हो जाता है।

कुम्भक प्राणायाम की ऊष्मा से जागृत होकर जब देवी कुण्डलिनी सुषुम्णा नाड़ी के अन्तर्वर्ती ब्रह्मरन्ध्र-पथ में प्रविष्ट होकर षट्-चक्रभेदन के क्रम से सहस्रार मण्डल में पहुँच कर परमशिव से समागम करती है, उस समय चिद्गगनचन्द्र-मण्डल से अमृतस्राव होता है। इस अमृत की धारा सुषुम्णापथ से नीचे की ओर प्रवाहित होकर ब्रह्मपथ में प्रतिष्ठित ब्रह्मा आदि देवताओं को तृप्त करती है। उस

समय चिद्गगन-मण्डल वितान की तरह आभासित होता है और चिद्गगन चन्द्रिका से सुषुम्णा में गुथी हुई अक्षमाला के वर्णरूप मनके मणियों की तरह जगमगाने लगते हैं।

अब आगे तृतीय श्लोक में संकेतसार विद्या के प्रथम बीज अर्थात् वर्णमाला के द्वादश अक्षर 'ऐ' की वन्दना की गई है।

वन्दे वाग्भवमैन्दवात्मसदृशं वेदादिविद्यागिरो
भाषा देशसमुद्भवाः पशुगताश्छदांसि सप्त स्वरान्।
तालान् पञ्च महाध्वनीन् प्रकटयत्यात्मप्रसारेण यत्
तद्बीजं पदवाक्यमानजनकं श्रीमातृके ते परम्।। ३ ।।

अतः परं सकलशब्दजालप्रकाशार्कसंकेतसारविद्यादिभूतं केवलं द्वादशस्वरूपं वाग्भवमभिनन्दनपूर्वकं प्रस्तौति—**वन्द इति।**

हे श्रीमातृके! ते तद्वाग्भवं बीजमहं वन्दे। कथंभूतम्? ऐन्दवात्मसदृशम्। पुनः कथंभूतं तत्? यदात्मप्रसारेणेदं सर्वं शब्दजालं प्रकटयति। पुनः कीदृशम्? पदवाक्य-मानजनकम् इत्यन्वयः। वन्दे अभिवादयामि। वाग्भवमृग्यजुःसाम्नामाद्यक्षरत्रय-समुदायरूपम्। ऐन्दवात्मसदृशम् इन्दोरिदमैन्दवं चन्द्रमण्डलं तस्यात्मा अमृतं तत्सदृशम् वाग्भवस्याप्यमृतप्रायाक्षरस्त्रावित्वात्। वेदादिविद्यागिरो वेदस्मृतिशास्त्रपुराणागमादीनां शब्दपारावाररूपाः। भाषाः संस्कृतप्राकृतपैशाचिकाः। देशसमुद्भवास्तत्तद्देशगतमनुष्याणां कवित्वव्यवहारक्षमाः। पशुगताः पशुपक्षिव्यवहारयोग्याः छन्दांसि अनुष्टुबादीनि। सप्तस्वरान् निषदादीन्। तालान् ध्रुवाद्यान्। पञ्च महाध्वनीन् भेर्यादीन्। प्रकटयति व्यक्तीकरोति। आत्मप्रसारेण आत्मनोऽमृतस्य प्रसारः प्रस्त्रवणं तेन। यत् यस्मात्। सर्वं शब्दजालं प्रसरति। तत् तस्मात् बीजं बीजप्रायम्। पदवाक्यमानजनकं पदमक्षरसमुदायरूपम्, वाक्यं पदसमुदायरूपम्, मानानि प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दादीनि, तेषां जनकं प्रादुर्भावकारकम्। श्रीमातृके सकलशब्दजालमातृभूते पञ्चाशद्वर्णरूपायाः परमुत्कृष्टम्।।३।।

पूर्णिमा—वर्णस्वरूपिणी हे माते! चन्द्र-मण्डल के अमृत के सदृश जीवनदायी और प्रसरणशील उस परम वाग्भव बीज की मैं वन्दना करता हूँ, जो वेदत्रयी के आद्य अक्षरों (अ+ई=ए+अ=ऐ) से घटित है, जो पद, वाक्य और प्रमाण का जनक है और जिसके आत्म-प्रसार से सभी विद्याओं, सभी भाषाओं, सभी छन्दों, सातों स्वरों, पचासों तालों, पाँचों महाध्वनियों तथा पशुओं और पक्षियों की ध्वन्यात्मक भाषाओं की उत्पत्ति हुई है।।३।।

विमर्श—ऋक्-यजुः और साम—ये तीन वेद हैं। इनके प्रथम मंत्रों के प्रथम

अक्षर (अ, इ और अ) वाग्भव बीज अर्थात् 'ऐ' में किस प्रकार घटित हैं, यह बताया जा चुका है।

पद-वाक्य-प्रमाण—पाणिनीय व्याकरण के अनुसार सुबन्त (संज्ञा) और तिङन्त (क्रिया) की संज्ञा 'पद' है। संज्ञा और क्रियापदों के मेल से वाक्य बनता है। वाक्य से विचारों की अभिव्यक्ति होती है।

'मान' का अर्थ है—प्रमाण। न्याय-शास्त्र में चार प्रकार के प्रमाण माने गये हैं; यथा—१. प्रत्यक्ष प्रमाण, २. अनुमान प्रमाण, ३. उपमान प्रमाण और ४. शब्द प्रमाण। इन प्रमाणों की अभिव्यक्ति या प्रस्तुति भी पदमूलक वाक्यों से ही होती है।

विद्या—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद एवं स्थापत्यशास्त्र आदि चारों उपवेद, मनुस्मृति-सहित २४ स्मृतियाँ; मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत आदि अठारह पुराण तथा अनेक उपपुराण, आगम मन्त्र, ६४ तन्त्र, वेद के शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण इत्यादि छः अंग, अलंकार तथा रीतिशास्त्र, नाट्य-शास्त्र आदि सभी प्राचीन शास्त्र और आज के सभी शास्त्र विद्या-समूह में परिगणित हैं।

भाषा—भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम। आदि काल में एक ही वैदिक भाषा थी। उसी वैदिक भाषा से लौकिक संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि प्राचीन भाषायें तथा तमिल, तेलगू, कन्नड तथा गुजराती, मराठी, बांग्ला आदि क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक भाषायें तथा सम्प्रति विश्व में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की उत्पत्ति हुई है।

छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, गायत्री, पंक्ति, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, आर्या आदि वैदिक एवं लौकिक छन्दों सहित विश्व की सभी भाषाओं के काव्य छन्द।

सप्त स्वर—संगीत अर्थात् गानविद्या के निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत एवं पञ्चम (सा-रे-ग-म-प-ध-नी) आदि सात स्वर। ध्रुव आदि पचास ताल, दुन्दुभी आदि वाद्यों की पाँच ध्वनियाँ—इन सबकी उत्पत्ति भी इसी वाग्भव बीज से हुई है।

त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां नाप्नोति शश्वद्विना
यद्बीजं व्यवहारजालमखिलं नास्त्येव मातस्तव।
तज्जाप्यस्मरणप्रसक्तिसुमतिः सर्वज्ञतां प्राप्य कः
शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनो नेन्द्रादिभिः स्पर्धते।।४।।

पूर्वं संकेतसारविद्यादिमं वाग्भवं प्रणम्येदानीं चतुर्विधपाण्डित्यमहाकाव्यरचन-सामर्थ्यप्रदं बालाविद्यादिमं वाग्भवं प्रस्तौति— त्रैलोक्येति।

हे मातः ! तव तद्वाग्भवबीजं विना कोऽपि त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां शश्वन्नाप्नोति। किञ्च तव तद्बीजं विना लोकेष्वखिलं व्यवहारजालं नास्त्येव। अन्यच्च तज्जाप्य-स्मरणप्रसक्तिसुमतिः सन् सर्वज्ञतां प्राप्येन्द्रादिभिः सह को न स्पर्धते। अपितु स्पर्धत्ये(त ए)वेत्यन्वयः। त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां त्रैलोक्ये स्वर्गमृत्युपातालेषु स्फुटाः(टां) सुरासुरमनुष्यमनोरञ्जनयोग्याः(योग्यां) मन्त्राणामुपदिष्टानुपदिष्टानाम्, तन्त्राणां पठितानाम्, महिमां सामर्थ्यम्। मन्त्राणां सामर्थ्यं शापानुग्रहादिकम्। तन्त्रसामर्थ्यं व्याख्यातृत्वम्। नाप्नोति कश्चिदपि नावगच्छतीत्यर्थः। शश्वन्निरन्तरम्। तद्बीजं विना वाग्भवबीजसाधन-मन्तरेण। व्यवहारजालं तूत्थानोपवेशनदानोपादानक्रयविक्रयशुद्धाशुद्धाद्यपारम्। अखिलं सांसारिकपारमार्थिकम्। (तद्बीजं विना) नास्त्येव न सम्भवत्येव। एवकारोऽत्रान्ययोग-व्यवच्छेदार्थकः। मातर्जननि, तव वागीश्वर्याः। तज्जाप्यस्मरणप्रसक्ति-सुमतिस्तस्य वाग्भवस्य जाप्यं विध्युक्तप्रकारेण स्मरणं यदा तदा शयनोपवेशनभ्रमणकालेऽपि मानसिकमेव तत्र प्रसक्तिस्तत्परता तया सुमतिः सर्वशास्त्राभिनिविष्टः। सर्वज्ञतां वागीश्वरताम्। प्राप्य लब्ध्वा। कः यः कश्चित्। शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनः शब्दब्रह्मसकलप्राणिगतचैतन्यभूता चिच्छक्तिः। तस्या निवासभूतं मन्दिरप्रायं वदनं यस्य। नकारोऽत्राप्रसक्तिनिरासकः। इन्द्रादिभिः सुरेशमुख्यैः सह स्पर्धते ईर्ष्यां कर्तुं क्षमते। 'अकारो वै सर्ववाक्' इति श्रुतेः।।४।।

पूर्णिमा—हे माते वागीश्वरि! आपके इस वाग्भव बीज की उपासना के बिना न तो कोई मनुष्य तीनों लोकों अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल लोक के निवासी देवताओं, मनुष्यों और असुरों को प्रसन्न करने वाले मन्त्र और तन्त्र की महिमा (सिद्धि) प्राप्त कर सकता है और न ही उसे लोक-व्यवहार की कुशलता ही प्राप्त होती है। यथाविधि दीक्षा और पुरश्चरण से इस मन्त्र को सिद्ध कर लेने तथा अहर्निश इसका ध्यान करने वाले साधक के मुँह अर्थात् जिह्वा में शब्दब्रह्म का वास हो जाता है तथा वह इन्द्र आदि देवताओं के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगता है।।४।।

विमर्श—यह पहिले ही प्रतिपादित किया जा चुका है कि विश्व में जितने भी निगम और आगम हैं, जितनी भी भाषायें और शास्त्र हैं, उन सबकी उत्पत्ति इसी वाग्भव बीज से हुई है। अतः समस्त मन्त्रशास्त्र और तन्त्रशास्त्र इसी वाग्भव बीज के अवदान हैं। इसलिये किसी भी तन्त्र या मन्त्र की उपासना और साधना प्रकारान्तर से वाग्भव बीज की ही साधना है।

'शब्दब्रह्म' से तात्पर्य चित् शक्तिरूपा जगदम्बा त्रिपुरा से है। जब साधक के मुंह (जिह्वा) में सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करने वाली चिति शक्ति का वास हो जाता है तो वह सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ हो जाता है तथा उसे इन्द्र आदि देवताओं के समान लोकोत्तर सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है।

मात्रा याऽत्र विराजतेऽतिविशदा तामष्टधा मातृकां
शक्तिं कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुं यस्तत्त्वविन्मन्यते।
सोऽविद्याखिलजन्मकर्मदुरितारण्यं प्रबोधाग्निना
भस्मीकृत्य विकल्पजालमखिलं मातः पदं तद् व्रजेत्।।५।।

पूर्वस्मिन् श्लोके सम्पूर्णं वाग्भवं स्तुत्वेदानीं वाग्भवकूटोपरितनमात्रां कुण्डलिनीं प्रस्तौति—**मात्रेति**।

हे मातः! अत्र या मात्रा विराजते तां कुण्डलिनीं शक्तिमष्टविधमातृकां च यो मन्यते, स तत्पदं व्रजेदित्यन्वयः। मात्रा या सामवेदाद्यक्षररूपा बीजाङ्कुरप्राया विश्वप्रपञ्चस्य मातृभूता। अत्र वाग्भवे। विराजते विद्योतते। अतिविशदा विस्पष्टा। तां मात्राम् अष्टधा वशिन्यादिवर्गाष्टकरूपेण। मातृकामेकपञ्चाशद्वर्णमयीम्। शक्तिं सृष्टिस्थितिसंहृतिकर्मसमर्थाम्। कुण्डलिनीं सर्वप्राणिमूलाधारवासिनीम्। चतुर्विधतनुमग्निसूर्यसोमसमष्टिरूपेण, अग्निकुण्डलिनी मूलाधारे, सूर्यकुण्डलिनी हृदये, सोमकुण्डलिनी भ्रूमध्ये, समष्टिकुण्डलिनी मूलाधाराधोगतवाग्भवाकारत्रिकोणे। यः सांप्रदायिकः। तत्त्वविद् आराध्यमुखादवगता-शेषपरमार्थः। मन्यते जानाति। भावयतीति यावत्। स एव मननपरायणः। अविद्याखिल-जन्मकर्मदुरितारण्यम् अविद्या सांसारिकी बुद्धिः, अखिलजन्मानि भावीनि द्विपदचतुष्प-दोरगादीनि, अखिलकर्माणि सञ्चितारब्धानि अखिलदुरितानि ज्ञाताज्ञातकृतानि, तेषामरण्यं भयानकत्वात्। प्रबोधाग्निना विज्ञानानलेन भस्मीकृत्य निर्दग्ध्वा(ध्य)। विकल्पजालं कल्पनानानावासनाः। अखिलं सांसारिकपारमार्थिकम्। मातर्जननि। पदं स्थानम्। तदनिर्वचनीयम्। सर्वसम्मतम्। उक्तं च नागभट्टैः—

एतस्याः परतः परात् परतरं निर्वाणशक्तेः पदं
शैवं शाश्वतमप्रमेयमचलं नित्योदितं निर्मलम्।
तद्विष्णोः पदमित्युशन्ति सुधियः केचित्पदं ब्रह्मणः
केचिद्धंसपदं निरञ्जनपदं केचिन्निरालम्बनम्।। इति।

व्रजेत् प्राप्नुयात् इति।।५।।

पूर्णिमा—हे माता! जो साधक आपके 'ऐ'काररूपी वाग्भव बीज के ऊपर लगी हुई विस्पष्ट मात्रा (ा) को, जो कि आठ प्रकार की अर्थात् 'अ'कार, 'क'कार चकार, 'ट'कार, 'त'कार, 'प'कार, 'य'कार और 'श'कार रूप आठ वर्गों की स्वामिनी वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी एवं कौलिनी युक्ता ५१ वर्णमयी मातृका तथा चार प्रकार की कुण्डलिनी-शक्ति के तत्त्व रूप को जान लेता है, वह साधक जन्म-जन्मान्तर में अविद्या (अज्ञान)-वश किये गये सभी दुष्कर्मों और पापों को अपनी ज्ञान-अग्नि से जलाकर आपके परम पद को प्राप्त करता है।।५।।

विमर्श—'मात्रा याऽत्र विराजते'—यहाँ 'मात्रा' शब्द से अभिप्राय सामवेद के आद्यअक्षररूपा बीजाङ्कुरप्राया विश्वप्रपञ्च की मातृभूता है।

'अष्टधा मातृका कुण्डलिनी-शक्ति'—शिव-शक्ति के समायोग से जनित नाद-बिन्दुमय शब्दब्रह्म प्राणिमात्र में कुण्डलिनी के रूप में स्थित है (तत्राप्य कुण्डली रूपं) और वह कुण्डलिनी से उद्भूत होकर कण्ठ-तालु आदि अवयवों का आश्रय लेकर गद्य-पद्यरूपा वाणी के रूप में अभिव्यक्त होता है। इस तरह कुण्डलिनी शब्दब्रह्म का अधिष्ठान और मातृकाओं का कोश है। मातृकाओं के 'अ'कार आदि आठ वर्ग हैं, जैसा कि बताया जा चुका है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कुण्डलिनी-शक्ति अष्ट वर्गात्मक मातृकास्वरूपा है और इसी से पचासों मातृकाओं की उत्पत्ति होती है, जैसा कि भगवान् शंकराचार्य ने प्रपञ्चसार में प्रतिपादित किया है—

पञ्चाशदंशगुणिताऽथ यदा भवेत् सा
देवी तदात्मविनिवेशितदिव्यभावा।
सौषुम्नवर्त्मसुषिरोदरनादसङ्गात्
पञ्चाशदीरयति पंक्तिश एव वर्णान्।। (२/६७)

कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुम्—कुण्डलिनी के चार प्रकार या चार भेद हैं। यथा—१. मूलाधार में अग्निकुण्डलिनी, २. हृदय में सूर्यकुण्डलिनी, ३. भ्रूमध्य में सोमकुण्डलिनी और ४. मूलाधार के वाग्भव आकार वाले त्रिकोण में समष्टि कुण्डलिनी।

परमपद—यह परमपद सर्वथा अनिर्वचनीय है। इसके बारे में कहा गया है—

एतस्याः परतः परात् परतरं निर्वाणशक्तेः पदं,
शैवं शाश्वतमप्रयेमचलं नित्योदितं निर्मलम्।
तद् विष्णोः पदमित्युदन्ति सुधियः केचिद् पदं ब्रह्मणः
केचिद्धंसपदं निरञ्जनपदं केचिन्निरालम्बनम्।।

इस पद को कोई निर्वाणशक्ति का परात् परतर पद कहता है, कोई इसे भगवान् शिव का नित्योदित, निर्मल, अप्रमेय, अचल और शाश्वत पद कहता है। कोई इसे विष्णुपद, कोई ब्रह्म पद, कोई हंसपद, कोई निरञ्जन और कोई निरालम्ब पद कहता है। अतः यह परमपद सर्वथा अनिर्वचनीय है। महर्षि दुर्वासा ने इस श्लोक में 'मातः तत् पदं' अर्थात् भगवती त्रिपुरा का पद कहा है।

तत्ते मध्यमबीजमम्ब कलयाम्यादित्यवर्णं क्रिया-
ज्ञानेच्छादिमनन्तशक्तिविभवव्यक्तिं व्यनक्ति स्फुटम्।

उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु स्वात्मप्रसारेण यत्
काम्यं ब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः कामं क्रियायोजितैः ।। ६ ।।

इदानीं सङ्केतसारविद्याया द्वितीयाक्षरं कामबीजत्वेन प्रस्तौति—**तत्त इति।**

हे अम्ब ! तत्ते मध्यमबीजमादित्यवर्णं क्रियाज्ञानेच्छादिमुत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु ब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः काम्यं चाहं कलयामि। कथंभूतं तत्? यत्स्फुटमनन्तशक्तिविभवव्यक्तिं व्यनक्तीत्यन्वयः। तत् तस्मात्। ते संकेतसारायाः। मध्यमबीजं केवलेकाररूपम्। अम्ब जननि कलयामि जानामि। आदित्यवर्णं बालार्कनिभम्। क्रियाज्ञानेच्छादिम् इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तीनां निदानभूतम्। एतासां कामकलाबिन्दुत्रयाविर्भूतत्वात्। अनन्तशक्तिविभवव्यक्तिम्, अनन्तानां शक्तीनां विभवः सामर्थ्यं तस्य व्यक्तिर्ज्ञानम्, व्यनक्ति प्रकटीकरोति। स्फुटं प्रत्यक्षतया। उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु उत्पत्तिः सृष्टिः, स्थितिः; पालनम्, कल्पः संहारः तेषु कल्पिताः प्रादुर्भाविता वामाज्येष्ठारौद्रीप्रधानानि ब्रह्मविष्णुरुद्राणां तनवो येन। स्वात्मप्रसारेण स्वस्य कामकलाक्षरस्य, आत्मा धामत्रयरूपं बिन्दुत्रयम्, तस्य प्रसारः स्फुरणम्। इदमुपलक्षणम्—कामकलाक्षरस्य त्रितयमात्रकारणत्वेन इच्छाज्ञानक्रिया वामाज्येष्ठारौद्रीप्रधाना ब्रह्मविष्णुरुद्राः सूर्यसोमाग्नयः अकारोकारमकाराः। लोकत्रयं पीठत्रयं लिङ्गत्रयं कालत्रयं वेदत्रयं वह्नित्रयं स्वरत्रयं च सर्वमुत्पन्नमित्यष्टादशश्लोके वक्ष्यति। यत् यस्मात् कारणात्। काम्यमुपास्यम्। ब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः। आदिशब्देन इन्द्रश्चन्द्रकुबेरसूर्याः। अन्यैश्च। कामं निश्चितम्। क्रियायोजितैः क्रियाः सृष्टिस्थितिसंहतिरूपाः तासु योजितैर्नियमितैः। एतद्विवरणं वामकेश्वरतन्त्रे विस्तरेणोक्तम्। मयाऽत्र ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते। अथवा कलयामि ककारलकारयुक्तं करोमि। तेन बालाया मध्यमबीजं कामराजाख्यं भवति।।६।।

पूर्णिमा—इस छठवें श्लोक में संकेतसार विद्या के द्वितीय अक्षर की कामबीजरूप में स्तुति की गई है।

हे माता! मैं आपकी संकेत-सार विद्या के उस मध्यम बीज की वन्दना करता हूँ, जो प्रात:कालीन सूर्य के समान अरुणाभ है तथा जिसने ब्रह्माण्ड की सृष्टि-स्थिति और संहार के लिये क्रमश: ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र को उत्पन्न किया है तथा अपने सृष्टि आदि कार्यों का सम्पादन करने की क्षमता एवं सामर्थ्य प्राप्त करने के निमित्त ब्रह्मा आदि देवगण जिस बीज की कामना अर्थात् उपासना करते हैं। हे माता! 'ई'काररूप आपका यह मध्यम बीज इच्छा-ज्ञान और क्रिया का आदि कारण है तथा अपने प्रसार से ब्रह्माण्ड-रचना के लिये आवश्यक सभी शक्तियों को प्रकट करता है। मैं इस 'ई'काररूप काम कला अक्षर को 'क'कार और 'ल'कार से युक्त करता हूँ।।६।।

विमर्श—१. 'स्वात्म-प्रसारेण'—रक्त-शुक्ल और मिश्र बिन्दुसंज्ञक बीजत्रय का आत्मस्वरूप वाला 'ई'काररूप यह कामकलाक्षर अपने प्रसार से त्रितय मात्र वस्तुओं अर्थात् इच्छा-ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्तियों, सूर्य-चन्द्र और अग्निरूप तीन ज्योतियों, अकार-उकार और 'म'काररूप तीन वर्णों, तीन लोकों, तीन पीठों, तीन लिङ्गों, वर्तमान-भूत-भविष्यरूप तीन कालों, ऋक्-यजु: और साम-संज्ञक तीन वेदों आदि को प्रकट करता है।

२. 'ब्रह्महरीश्वरादीविबुधै:'—यहाँ प्रयुक्त आदि शब्द भगवती के ब्रह्मा-विष्णु और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य उपासकों का ज्ञापक है। ये अन्य उपासक हैं—मनु, चन्द्रमा, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, कार्तिकेय, शिव, दुर्वासा और दत्तात्रेय।

अगले सातवें श्लोक में कामराज बीज के सामर्थ्य का निरूपण करते हुए उसे प्रणाम किया गया है।

कामान् कारणतां गतानगणितान् कार्यैरनेकैर्महो-
मुख्यैः सर्वमनोगतानधिगतान् मानैरनेकैः स्फुटम्।
कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यारिष्ट्कं च यद्
बीजं भ्राजयति प्रणौमि तदहं ते साधु कामेश्वरि।।७।।

अत एव तत्कामराजबीजसामर्थ्यवर्णनपुर:सरं तमेव प्रणमति— **कामानिति**।

हे कामेश्वरि! तव तद् बीजमहं प्रणौमि। तत् किंभूतम्? यत् कारणतां गतान् कामान् महीमुख्यैः कार्यैः सहाधिगतान् कामान् मानैः सह कामाद्यरिषट्कं च भ्राजयतीत्यन्वयः। कामान् ब्रह्मादिकानां सामर्थ्यरूपान्। कारणतां गतान् तत्तत्कार्यानुकूलान्। अगणितानसंख्यातान्। कार्यैर्मनोगतैः। अनेकैर्नानाविधैः। महीमुख्यैः पृथिव्यादिकैः। सर्वमनोगतान् सर्वप्राणिचित्तस्थान्। अधिगतान् ज्ञातान्। मानैः प्रत्यक्षादिभिः। अनेकैर्वेदशास्त्रपुराणोक्तैः। स्फुटं प्रव्यक्तम्। कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यारिषट्कं ज्ञानिनामावरकत्वादरित्वमेतेषाम्। सांसारिकाणां स्थितिकारित्वम्। चकारः समुच्चये। यत् ककारलकारसहितं बीजं कामकूटम्। भ्राजयति पोषयति। प्रणौमि प्रकर्षेण नमस्करोमि। अहं स्तोत्रकर्ता ते बालाविद्यायाः साधु सर्वोत्कृष्टम्। कामेश्वरि कामकूटाधिदेवते।।७।।

पूर्णिमा—कामकूट की अधीश्वरी हे माते! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं को अपना-अपना कार्य करने और अपने-अपने दायित्व के निर्वहन की शक्ति और समर्थता आपके इस कामबीज से प्राप्त हुई है। अनुभवगत प्रत्यक्ष और वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से यह तथ्य सिद्ध है कि आपके इस कामबीज की यथाविधि उपासना करने से मनुष्य की भू-सम्पत्ति-प्राप्ति आदि विषयक सभी कामनायें पूरी

होती हैं। आपके इस काम बीज की सबसे बड़ी और महती विशेषता यह है कि मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के लिये शत्रुस्वरूप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य उसके सांसारिक जीवन के लिये आभूषणस्वरूप हो जाते हैं। मैं 'क'कार और 'ल'कारयुक्त इस कामकूट को अत्यन्त श्रद्धा और आदर-सहित प्रणाम करता हूँ।।७।।

यद्भक्ताखिलकामपूरणचणस्वात्मप्रभावं महा-
जाड्यध्वान्तनिवारणैकतरणिज्योतिः प्रबोधप्रदम्।
यद्वेदेषु च गीयते श्रुतिमुखं मात्रात्रयेणोमिति
श्रीविद्ये तव सर्वराजवशकृत् तत्कामराजं भजे।।८।।

इदानीं सिंहावलोकनन्यायेन पुनरपि संकेतसारविद्यायाः कामकलारूपमध्यमबीजस्याखिलकामपूरकत्वेन विशिष्टज्ञानप्रकाशकत्वं प्रणवत्वं च प्रतिपादयति— **यद्भक्तेति।**

हे श्रीविद्ये! तव तत्कामराजमहं भजे। (तत् तस्मात्) यद्यस्माद् भक्ताखिलकामपूरणचणस्वात्मप्रभावम्। कथंभूतम्? जाड्यध्वान्तनिवारणैकतरणिज्योतिः। पुनः कथंभूतम्? प्रबोधप्रदम्। यद्वेदेषु मात्रात्रयेण 'ओम्' इति गीयते। अत एव श्रुतिमुखम्। पुनः कथंभूतम्? सर्वराजवशकृदित्यन्वयः। यत् यस्मात्। कामराजं द्वितीयम्। भक्ताखिलकामपूरणचणस्वात्मप्रभावं भक्तानामुपासकानाम्, अखिलाः सर्वे कामा मनोरथाः, तेषां पूरणं संपादनम्, तत्र चणो दक्षः, स्वात्मप्रभावः स्वस्य कामकलाबीजस्य आत्मा बिन्दुत्रयम्, तस्य प्रभावः प्रसारः पूर्वोक्तवामादिब्रह्मादिदेवतात्रयं विद्यते यस्मिन्। महाजाड्यध्वान्तनिवारणैकतरणिज्योतिः महाजाड्यमज्ञानं तदेव ध्वान्तमन्धकारः, तस्य निवारणं विनाशनम्, तत्रैकमद्वितीयम्, तरणिज्योतिरिव तरणिः सूर्यः, तस्य ज्योतिः प्रकाशस्तद्वत्। प्रबोधप्रदं प्रकर्षेण बोधस्तत्त्वज्ञानं प्रददाति प्रकर्षेण निश्चयेनोत्पादयतीति। यत् यस्मात्। तुरीयस्वरूपम्। वेदेषु वेदाध्ययनारम्भसमयेषु। चकारः समुच्चये। गीयते उच्चार्यते। श्रुतिमुखं वेदादिभूतम्। मात्रात्रयेण अकारोकारमकाराक्षरत्रयेण। ओमिति। श्रीविद्ये संकेतसारे। तव त्र्यक्षर्याः। सर्वराजवशकृत्। सर्वजीवाः राजानश्च वशं करोति। तत् पूर्वोक्तम्। कामराजं कामराजसंज्ञम्। भजे सेवे। मात्रात्रयेणेति कोऽर्थः? कामकलाक्षरस्य बिन्दुत्रयात्मकत्वेन बिन्दुत्रयस्य सूर्यसोमाग्नित्वेन सोमसूर्याग्नीनामकारोकारमकारात्मता सर्वत्रागमेषु दृष्टेत्येतत्सर्वं त्रिकात्मकं कामकलाक्षरे विश्रान्तमिति प्रणवेनापि कामकलाक्षरमेव गीयत इति तात्पर्यम्।।८।।

पूर्णिमा—हे माते! श्रीविद्ये! मैं आपके उस कामराज कूट की वन्दना करता हूँ, जो अपने भक्तजनों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने के लिये विख्यात है, जो अज्ञानता के अन्धकार का निवारण करने के लिये सूर्य के प्रकाश-समान और तत्त्वज्ञानोपदेशक है। मात्रात्रय का अधिष्ठान होने के कारण त्र्यक्षरात्मक प्रणव (ॐ)

स्वरूप है, जिसका उच्चारण वेद-मन्त्रों के प्रारम्भ में किया जाता है और जो बड़े-बड़े वैभवशाली महाराजाओं को भी वश में करने वाला है॥८॥

विमर्श—'मात्रात्रयेण'—तीन मात्राओं से। कामकला अक्षर रक्त बिन्दु, शुक्ल बिन्दु और मिश्र विन्दु का अधिष्ठान होने के कारण विन्दुत्रयस्वरूप है। ये तीनों बिन्दु सूर्य-चन्द्र और अग्निरूप हैं। इनमें से सूर्य का बीज 'अ'कार है, चन्द्रमा का बीज 'उ'कार और अग्नि का बीज 'म'कार हैं। 'अ'कार 'उ'कार और 'म'कार वेद-मुख प्रणव (ॐ) के घटक वर्ण हैं। इस तरह कामकला अक्षर 'ॐ'कारस्वरूप है, जिसका उच्चारण वेदमन्त्रों के आदि में किया जाता है।

श्रीविद्ये!—'श्रीविद्ये' यह सम्बोधन भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के लिये किया गया है। 'ब्रह्माण्डपुराण' के अनुसार केवल श्रीविद्या में ही मोक्ष प्रदान करने का सामर्थ्य है—

इति मन्त्रेषु बहुधा विद्यायाः महिमोच्यते।
मोक्षैकहेतुविद्या तु श्रीविद्या नात्र संशयः॥
न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वच्छब्दः प्रयुज्यते।
मोक्षैकहेतुर्विद्या सा श्रीविद्यैव न संशयः॥

अब अगले श्लोक में संकेतसार विद्या के तृतीय बीज का उद्धार, कामकला से उसकी समरूपता, ब्रह्मात्मकता तथा चिद्रूपता का प्रतिपादन किया गया है।

यत्ते देवि तृतीयबीजमनलज्वालावलीसन्निभं
सर्वाधारतुरीयबीजमपरं ब्रह्माभिधाशब्दितम्।
मूर्धन्यान्तविसर्गभूषितमहौकारात्मकं तत्परं
संविद्रूपमनन्यतुल्यमहिम स्वान्ते मम द्योतताम्॥ ९॥

अतः परं संकेतसारविद्यायास्तृतीयबीजस्योद्धारं कामकलासाम्यतां ब्रह्मात्मकतां चिद्रूपतां च प्रतिपादयति— **यत्ते देवि इति।**

हे देवि! तत्ते तृतीयं बीजं मम स्वान्ते द्योततामित्यन्वयः। यद् वक्ष्यमाणरूपम्। ते तव देवि प्राग्वत्। तृतीयं तार्तीयम्। बीजं बीजाक्षरम्। अनलज्वालावलीसन्निभम् अनलस्य वह्नेः, ज्वालाः शिखाः, तासामावली श्रेणी तस्या निभेव प्रभा विद्यते यस्मिन्। सर्वाधारतुरीयबीजं सर्वस्य विश्वस्याधारभूतं त्रिकोणरूपं तेनैकाराक्षरं तस्य तुरीयमौकारः कारणम्। अपरं द्वितीयम्। ब्रह्माभिधाशब्दितं ब्रह्मेतिनाम्ना संकेतितम्। मूर्धन्यान्तविसर्ग-भूषितमहौकारात्मकं मूर्धन्यं बिन्दुरन्ते मस्तके यस्य विसर्गभूषितं विसर्गेण बिन्दुभ्यां भूषितं युक्तम्, अत एव महौकारात्मकं महत्त्वं तस्य बिन्दुत्रयसहितत्वात्। तत् पूर्वोक्तम्

परमुत्कृष्टम्। पराख्यमिति यावत्। संविद्रूपं ज्ञानात्मकम्। अनन्यतुल्यमहिम अतुलप्रभावम्। स्वान्ते हृदये। मम तवाराधकस्य। द्योततां भासताम्।।९।।

पूर्णिमा—हे देवि! बाला विद्यास्वरूप आपका वह तृतीय बीज (सौः) सदैव मेरे हृदय में प्रकाशित होता रहे, जो अग्नि की लपटों के समान देदीप्यमान है, सारे जगत् के आधार अर्थात् उद्भवस्वरूप त्रिकोणाकार 'ए'कार का कारण है, जिसे अपर ब्रह्म कहा जाता है तथा बिन्दु और विसर्गरूप तीन बिन्दुओं से युक्त होने के कारण जिसकी महिमा अपार है, जो संविद्रूप है।।९।।

विमर्श—'सर्वाधारतुरीयबीजम्'—सर्व अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का आधार अर्थात् उत्पत्ति का स्थान। देवनागरी वर्णमाला में 'ए'कार का रूप अधोमुखी त्रिकोणाकार है। अधोमुखी त्रिकोणाकार होने के कारण इसे योनिस्वरूप माना गया है, जिसने सम्पूर्ण जगत् को जन्म दिया है। यह 'ए'कार वर्णमाला का एकादश अर्थात् ग्यारहवाँ वर्ण है। इसे ही लक्ष्य करके 'नित्याषोडशिकार्णव' (वामकेश्वर तन्त्र) में कहा गया है—

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहन्तं जगदद्यापि दृश्यते।। (१/६)

इस 'ए'कार की व्युत्पत्ति 'अ'काररूप शिव और 'ईकार'रूपा शक्ति के समयोग (अर्थात् सन्धि = अ + इ = ए) से होती है और इसका आकार योनिवत् अधोमुख त्रिकोणाकार है, अतः इसे समस्त जगत् की उत्पत्ति का स्थान कहा गया है। इस 'ए'कार से चतुर्थ वर्ण 'औ' है, जो बिन्दु और विसर्ग से युक्त है। बिन्दु-विसर्ग से विभूषित 'स'कार अर्थात् 'सौः' बाला-विद्या का तृतीय बीज है। यह परा-बीज है।

सर्वं सर्वत एव सर्गसमये कार्येन्द्रियाण्यन्तरा
तत्तद्दिव्यहृषीककर्मभिरीयं संव्यश्नुवाना परा।
वागर्थव्यवहारकारणतनुः शक्तिर्जगद्व्यापिनी
यद्बीजात्मकतां गता तव शिवे तन्नौमि बीजं परम्।। १०।।

इदानीं बालायास्तृतीयं बीजं पराशक्तिरूपेण नमस्करोति— **सर्वमिति।**

हे शिवे! इयं परा शक्तिस्तव यद्बीजात्मकतां गता तत्परं बीजमहं नौमि। किं कुर्वाणा? सर्गसमये सर्वतः सर्वं संव्यश्नुवाना। अन्तरा अनन्तरं तत्तद्दिव्यहृषीककर्मभिः सह कार्येन्द्रियाणि च संव्यश्नुवाना इत्यन्वयः। सर्वं वस्तुजातम्। सर्वतः सर्वस्मात्। एवकारोऽत्रान्योन्याश्रयव्यवच्छेदकः। सर्गसमये सर्गादौ। कार्येन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च। अन्तरा तदनन्तरम्। तत्तद्दिव्यहृषीककर्मभिः। सह इति शेषः। तत्तत्

तेषां तेषां दिव्यहृषीककर्मभिः शब्दादिभिर्वचनादिभिश्च सह संव्यश्नुवाना संसृज्यमाना। परा परमोत्कृष्टा। वागर्थव्यवहारकारणतनुः वाचामर्थानां च यो व्यवहारः प्रवृत्तिः, तत्र कारणं तनुर्यस्याः। शक्तिः प्राग्वत्। जगद्व्यापिनी कार्यकारणकर्तृत्वज्ञेयज्ञानज्ञातृत्ववाच्य-वचनवक्तृत्वादित्रितयमात्ररूपेण। गता प्राप्ता। तव बालात्रिपुरविद्यायाः। शिवे कल्याणरूपे तत् पराबीजम्। नौमि नमस्करोमि। बीजं प्राग्वत्। परं परासंज्ञम्। एतदुक्तं भवति—इयं परा शक्तिः सर्गसमये बिन्दुत्रयरूपकामकलाक्षरादाविर्भूय सर्वप्राणिसर्ववस्तुजीवजातकदम्बात् सर्वं यथा यथा समुत्पाद्य पश्चात्तत्तद्देवताधिष्ठितज्ञानकर्मेन्द्रियाण्युपस्थाप्य शब्दशब्दार्थसृष्टि-निदानरूपा सा पराबीजरूपतां प्राप्नोति तत्पराबीजं सर्वोत्कृष्टमिति।।१०।।

पूर्णिमा—हे शिवे! हे कल्याणकारिणी माते! तुम्हारा यह परा बीज उस परा-शक्ति का वाचक है, जिस परा-शक्ति ने सृष्टि का निर्माण किया तथा सृष्टि के निर्माण के समय समस्त कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों एवं उनके शब्दादि तथा वचनादि कार्यों को उत्पन्न करके उनका परस्पर मेलन किया और इस तरह इन्द्रिय-व्यापार को गति प्रदान की, जो परा-शक्ति वागर्थ अर्थात् शब्द एवं अर्थ-सृष्टि तथा उनके वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की कारणस्वरूपा है तथा जो कार्य-कारण एवं कर्तृव्य, ज्ञेय-ज्ञान एवं ज्ञातृव्य, वाच्य-वचन एवं वक्तृत्व आदि त्रिमात्र-स्वरूपिणी है तथा जो समस्त संसार में समान रूप से व्याप्त है, वही परा-शक्ति तुम्हारी बाला-विद्या के तृतीय कूट 'सौः' के रूप में अभिव्यक्त हुई है। मैं इस पराबीज को प्रणाम करता हूँ।।१०।।

विमर्श—बाला-विद्या के तृतीय कूट के बारे में अलग-अलग मत हैं। आनन्दभैरव के अनुसार यह तृतीय कूट केवल बिन्दु (अनुस्वार)-युक्त है (अर्थात् सौं)। दक्षिणामूर्ति के अनुसार केवल विसर्गयुक्त है—(अर्थात् सौः)। हयग्रीव के मतानुसार यह तृतीय कूट बिन्दु और विसर्ग दोनों से युक्त (अर्थात् सौंः) है।

इसमें 'स'कार (सः) अर्थात् वह यानी ब्रह्म का द्योतक है। विसर्ग (:) हकार का और 'ह'कार अहम् (मैं) का ज्ञापक है। 'औ'कार 'सः' और 'अहम्' का समन्वयक है। इस तरह 'सः' और 'अहम्' से समन्वित 'सौंः' वेद के महावाक्य 'सोऽहम्' का प्रकाशक है।

अग्नीन्दुद्युमणिप्रभञ्जनधरानीरान्तरस्थायिनी
शक्तिर्ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता।
सृष्टस्थावरजङ्गमस्थितमहाचैतन्यरूपा च या
यद्बीजस्मरणेन सैव भवती प्रादुर्भवत्यम्बिके।। ११।।

पुनरपि पराबीजस्मरणेन परदेवतासाक्षात्कारो भवतीति दर्शयति—**अग्नीन्द्विति।**

हे अम्बिके! सैव भवती यद्बीजस्मरणेन प्रादुर्भवति तत्परं बीजं नौमीति पूर्वश्लोकस्थेनान्वयः। सैव का? याग्नीन्दुद्युमणिप्रभञ्जनधरानीरान्तरस्थायिनी अग्निर्हुताशनः, इन्दुश्चन्दः, द्युमणिः सूर्यः, प्रभञ्जनो वायुः, धरा पृथ्वी, नीरं जलम्, आन्तरमाकाशम्, एतेषु स्थितिशीला। उक्तं चाभियुक्तैः—

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शुचिनि त्वमूष्मा
निःसारमेतदखिलं त्वदृते यदि स्यात्।। इति।

शक्तिः पूर्वोक्ता। ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता ब्रह्मा स्रष्टा, हरिर्विष्णुः, ईशः शिवः, वासव इन्द्रः, तन्मुखास्तदाद्या अमर्त्या देवाः, असुरा दैत्याः येषामात्मस्थिता आत्मनि सामर्थ्यरूपेण वर्तमाना। सृष्टस्थावरजङ्गमस्थितमहाचैतन्यरूपा सृष्टेषु स्थावरेषु जङ्गमेषु स्थितं वर्तमानं महाचैतन्यं जीवनमूलं तदेव रूपं यस्याः। च समुच्चये। या पराशक्तिः। यद्बीजस्मरणेन पराबीजचिन्तनेन। सैव या पराबीजतां प्राप्ता। भवती त्वमेव। प्रादुर्भवति प्रत्यक्षा भवति। अम्बिके प्रतिपालिके इति।।११।।

पूर्णिमा—हे अम्बिके! सूर्य-चन्द्र और अग्नि में, जल-थल और वायु में शाश्वत रूप से निवास करने वाली परा-शक्ति तुम ही हो। तुम ही ब्रह्मा-विष्णु और ईश एवं इन्द्र आदि देवताओं; साथ ही असुरों की सामर्थ्य-शक्ति (आत्म-शक्ति) हो। संसार के चर-अचररूप समस्त प्राणि-जगत् की मूल चेतनास्वरूपिणी परा-शक्ति भी तुम ही हो। अतः तुम्हारे परा-बीज के स्मरण (उपासना) से तुम्हारे भक्तों को तुम्हारे परा-शक्तिरूप के दर्शन होते हैं। मैं तुम्हारे इस परावीज को प्रणाम करता हूँ।।११।।

विमर्श—१. परा-शक्ति की सर्वव्यापकता की वन्दना करते हुए 'अम्बास्तव' में कहा गया है—

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वम्
त्वं चेतनाऽसि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेतदखिलं त्वदृते यदि स्यात्।।

हे माते! तुम ही चन्द्रमा की चाँदनी हो, सूर्य की कान्ति हो, मनुष्यों की चेतना हो, हवा की (प्रबल) शक्ति हो, जल की मधुरता हो और अग्नि की ऊष्मा हो। यदि इनमें तुम नहीं रहो तो ये सभी बेजान हो जायँ।

२. अम्बिका अर्थात् माता। चूंकि सन्तान का पालन-पोषण माता ही करती है, अत: अम्बिका का अर्थ प्रतिपालिका भी है।

स्वात्मश्रीविजिताजविष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं
यद्विद्याकविताविताललहरीकल्लोलिनीदीपकम्।
बीजं यत्त्रिगुणप्रवृत्तिजनकं ब्रह्मेति यद्योगिनः
शान्ताः सत्यमुपासते तदिह ते चित्ते दधे श्रीपरे।। १ २।।

पुनरपि तदेव त्रिकात्मकं पराबीजं श्रीपदं वाक्सिद्धिप्रदं मोक्षप्रदं चेति प्रतिपादयति— **स्वात्मेति** हे श्रीपरे! ते तद्बीजमहमिह चित्ते दधे। तत्कथंभूतम्। उक्तरूपम्......। स्वात्मश्रीविजिताज–विष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं स्वात्मश्री: स्वस्यात्मा सकारौकारबिन्दुत्रयं तस्य श्रीर्विभूतिः। सामर्थ्यमिति यावत्। तया विजितानामजविष्णुमघोनां श्रीपूरणे संपत्तिसंपादने एकं व्रतं यस्य। यत् पराबीजमेव। विद्याकविताविताललहरीकल्लोलिनीदीपकम्, विद्याश्च कविताश्च विद्याकविता:, विद्याकविता एव वितानं तत्र लहर्य इव लहर्यः, तासु कल्लोलिनीव कल्लोलिनी तां दीपयति प्रकाशयतीति। बीजं पराबीजम् यदुक्तरूपम्। त्रिगुणप्रवृत्तिजनकं त्रिगुणानां सत्त्वरजस्तमोगुणानां प्रवृत्तिं प्रसारं जनयत्युत्पादयतीति। ब्रह्मेति। मोक्षप्रदमिति। यद्बीजम्। योगिनो योगनिरता:। सत्यं शाश्वतम्। शान्ता साधव:। उपासते निदिध्यासनयोगेन। तद्बीजम्। इह जन्मनि। ते परायाः। चित्ते हृदये। दधे भावयामि। श्रीपरे श्रिया वैभवेन परा सर्वोत्कृष्टेति।।१२।।

पूर्णिमा—हे श्रीपरे अर्थात् अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी भगवती त्रिपुरे! मैंने अपने चित्त में आपके उस परा-बीज को धारण कर रखा है, जिसने अपनी आत्मश्री अर्थात् अपने आत्मस्वरूप 'स'कार-'औ'कार तथा बिन्दुत्रय के ऐश्वर्य (सामर्थ्य) से ब्रह्मा-विष्णु और इन्द्र को जीतने के बाद भी उन्हें ऐश्वर्य और सामर्थ्यशाली बनाये रखने का व्रत ले रखा है अर्थात् जो उन्हें शाश्वत रूप से ऐश्वर्य एवं सामर्थ्य देने के लिये तत्पर रहता है, जो विद्या और कविता के वितान की लहरी-रूपिणी नदी को प्रकाशित (उजागर) करने वाला है, जो सत्त्व-रज और तमोगुण की प्रवृत्ति का जनक (प्रसारक) है और जिस बीज को शाश्वत मोक्षदायक मानकर मुमुक्षु योगिजन शान्त चित्त से उसकी उपासना करते हैं।।१२।।

एकैकं तव मातृके परतरं संयोगि वायोगि वा
विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं जाड्यान्धकारापहम्।
यन्निष्ठाश्च महोत्पलासनमहाविष्णुप्रहर्त्रादयो
देवा: स्वेषु विधिष्वनन्यमहिमस्फूर्तिं दधत्येव तत्।। १ ३ ।।

पूर्वं 'वन्दे वाग्भवम्' इत्यादि 'स्वात्मश्री' इत्येतैर्दशभिः श्लोकैः संकेतसार-बालाविद्याबीजत्रयस्य क्रमेण सामर्थ्यं प्रतिपाद्येदानीं विद्याद्वयस्यान्यतरसंयुक्तबीजाराधनेन यथेष्टफलप्राप्तिं प्रतिपादयति—एकैकमिति।

हे मातृके! एकैकं तत्र बीजं संयोगि वायोगि वा विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं जाड्यान्धकारापहं च भवति। परतरं यन्निष्ठा महोत्पलासनमहाविष्णुप्रहर्त्रादयो देवाः स्वेषु विधिषु अनन्यमहिमस्फूर्तिं दधत्येवेत्यन्वयः। एकैकमन्यतमविद्यायाः। तव त्र्यक्षर्याः। मातृके स्वरव्यञ्जनरूपे। परतरमुत्कृष्टादुत्कृष्टम्। संयोगि व्यञ्जनयुतम्। वा विकल्पे। अयोगि वा व्यञ्जनरहितं वा। विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं विद्याश्चतुर्दशविद्याः, आदिशब्देन यस्य यदिष्टम्, तेषां प्रकटप्रभावः अलौकिको विस्तारः, तस्य जनकमुत्पादकम्। जाड्यान्धकारापहं जाड्यमज्ञानम्, (तदेवान्धकारम्) तदपहन्ति नाशयति तत्। यन्निष्ठा यदक्षरस्मरणतत्पराः। च समुच्चये। महोत्पलासनो ब्रह्मा। महाविष्णुर्विश्वपालकः, प्रहर्ता ईश्वरः, आदिशब्देनेन्द्रादयः, देवाः, दिवि क्रीडातत्पराः। स्वेषु स्वस्वकर्तव्येषु विधिषु साङ्गोपाङ्गेषु अनन्यमहिमस्फूर्तिम् अनन्यत्वं इतरानपेक्षत्वम्, महिमत्वं लोकोत्तरत्वम्, स्फूर्तिस्तत्त-त्कार्यातिशायिनी तां प्राप्नुवन्त्येव। एवकारोऽत्र निश्चयाधायकः। तत् तस्मात्।।१३।।

पूर्णिमा—तीसरे श्लोक (वन्दे वाग्भवं...) से लेकर १२वें श्लोक (स्वात्मश्रीविजिताज) पर्यन्त दस श्लोकों में संकेतसार और बाला विद्या के बीज-त्रय का यथाक्रम सामर्थ्य- निरूपण के बाद इस तेरहवें श्लोक में यह प्रतिपादित किया गया है कि इन दोनों विद्याओं में से किसी भी विद्या के एक बीज की साधना करके भी अभीष्टसिद्धि प्राप्त की जा सकती है। स्वर-व्यञ्जन-स्वरूपिणी हे मातृके! हे त्रिपुरे! आपकी दोनों विद्याओं (संकेतसारविद्या और बाला विद्या) का प्रत्येक अक्षर, चाहे वह व्यञ्जनयुक्त (संयोगी) हो अथवा व्यञ्जनरहित (अयोगी) हो, अज्ञानरूपी अंधकार (जाड्यान्धकार) का नाश करके चतुर्दश विद्याओं का प्रकाश फैलाने में समर्थ है। तात्पर्य यह कि किसी भी एक बीजाक्षर की साधना करने से साधक के अज्ञान का निवारण होकर उसे चतुर्दश विद्याओं का प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त हो जाता है। इनमें से किसी एक बीजाक्षर की उपासना से ब्रह्मा (महोत्पलासन), महाविष्णु, प्रहर्ता (ईश्वर) तथा स्वर्ग में क्रीड़ा करने वाले इन्द्र आदि अनन्य देवों को अपने-अपने लोकोत्तर दायित्वों के सम्यक् रूप से सञ्चालन एवं निष्पादन का बल और सामर्थ्य प्राप्त हुआ है।।१३।।

विमर्श—स्वर और व्यंजन-समन्वित वर्णमाला की संज्ञा 'मातृका' है, जिससे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। ज्ञानार्णवतंत्र (प्रथम पटल) में कहा गया है—'अकारादिक्षकारान्ता मातृका' (पीठरूपिणी) और 'अक्षमालेति विख्याता मातृका'

(वर्णरूपिणी)। यह मातृका ही त्रिपुरा है। मातृका शब्द से परशिव की ईश्वरी महाशक्ति का बोध होता है और यह महाशक्ति ही त्रिपुरा है (द्रष्टव्य—मातृकाचक्रविवेक-प्रथम खण्ड द्वितीय सूत्र)।

एकैकम्—वामकेश्वरी तन्त्र में भी एक-एक बीजाक्षर की साधना का माहात्म्य-निरूपण करते हुए कहा गया है—

यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः।
रवितार्क्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानिलविष्णुभिः।।

अर्थात् एक बीजाक्षर सिद्ध हो जाने मात्र से मनुष्य अर्थात् भगवती त्रिपुरा का साधक सूर्य, गरुड, चन्द्रमा, कामदेव, शंकर, अग्नि तथा विष्णु आदि देवताओं से स्पर्धा करने लगता है अर्थात् इन देवों के समान सामर्थ्यवान हो जाता है; क्योंकि इन देवताओं को भी शक्ति और सामर्थ्य की प्राप्ति इन्हीं बीजाक्षरों की साधना से प्राप्त हुई है।

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुर-
च्छक्त्याख्यानि चतुःश्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्टकूटानि ते।
भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते शिवे
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत्।। १४।।

अतः परं पूर्वोक्तविद्याद्वयगतबीजत्रयं महाविद्याकूटत्रयं च यो जानाति तस्य सामर्थ्यं प्रतिपादयति— इत्थमिति।

हे आरक्तकान्ते! हे शिवे, इत्थं त्रीणि बीजानि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराज-स्फुरच्छक्त्याख्यानि त्रीण्यप्युत्कृष्टकूटानि यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थिति-ध्वंसकृद्भवति। कथंभूतानि? भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितानीत्यन्वयः। इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण। त्रीणि संकेतसारबालाविद्यायाः। अपिः समुच्चये। मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुर-च्छक्त्याख्यानि मूलस्य महाविद्याया वाग्भवं प्रथमकूटं महाश्रीकामराजं महाविद्यायाः श्रीपदं सौन्दर्यप्रदं कामराजकूटम्। महत्त्वमेतस्य पूर्वोक्तसंकेतसारबालाविद्याकामकूटापेक्षया। स्फुरच्छक्त्याख्यं स्फुरन्ती चमत्कारकारिणी शक्तिर्यस्य। एतदभिधेयानि च तानि। चतुःश्रुतिप्रकटितानि चतुर्वेदेषु प्रोक्तानि। अथर्ववेदे सौभाग्यकाण्डे—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादिविद्या।। इति।

ऋग्वेदे—'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्यादिभिः प्रकाशितानि। उत्कृष्टकूटानि उत्कृष्टानि अतुलसामर्थ्यवन्तीनि, कूटानि वर्णसमुदायरूपाणि। भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितानि

पञ्चषट्‌चतुरक्षरैर्ज्ञातानि। आरक्ता बालार्कतुल्या कान्तिर्यस्याः। शिवे कल्याणरूपे। य उपासकः। जानाति सत्संप्रदायाचार्यमुखादवगच्छति। स एव साभिषेकलब्धविद्य एव। सर्वजगतां स्थावरजङ्गमानाम्। सृष्टिस्थितिध्वंसकृत् सृष्टिरुत्पत्तिः, स्थितिः पालनम्, ध्वंसो नाशः एतत्कार्यं कर्तुं समर्थः स्यादिति।।१४।।

पूर्णिमा—उदीयमान सूर्य के समान लाल रंग की अंगकान्ति वाली हे शिवे! जो व्यक्ति संकेतसारविद्या (बाला-विद्या) के तीनों कूटों को और/अथवा पाँच, छः तथा चार अक्षरों वाले वाग्भव कूट, कामराज कूट और शक्तिकूट-समन्वित पञ्चदशाक्षरी रूप मूल-विद्या को जानता है, वह स्थावर और जंगमरूप जगत् की सृष्टि-स्थिति तथा संहार करने में सर्वथा सक्षम होता है।।१४।।

विमर्श—१. इथं त्रीण्यपि—इस प्रकार तीन को अर्थात् संकेतसार बाला विद्या के तीन कूटात्मक तीन बीजाक्षरों को।

२. भूतर्तश्रुतिसंख्यवर्णविदितानि—आकाश आदि महाभूत, जिनकी संख्या पाँच है। अतः 'भूत' का अर्थ हुआ—पाँच। मूल विद्या पञ्चदशाक्षरी के वाग्भव कूट (कएईलह्रीं) में पाँच अक्षर हैं। अतः 'भूत' से तात्पर्य निकला पाँच अक्षरों वाला वाग्भव कूट।

ऋतु—वसंत आदि ऋतुओं की संख्या छः है। यहाँ छः (६) से तात्पर्य है—मूल पञ्चदशाक्षरी विद्या का कामराज कूट, जिसके अक्षरों की संख्या (हसकलह-ह्रीं) छः है।

श्रुति—श्रुति अर्थात् वेदों की संख्या चार (४) है। यहाँ श्रुति अर्थात् वेद से अभिप्राय मूल पञ्चदशाक्षरी विद्या के शक्ति-कूट (हसकलह्रीं) से है, जिसकें वर्णों की संख्या चार (४) है।

ज्ञानार्णवतन्त्र (पटल-११) में भी कहा गया है—

वाग्भवं पञ्चवर्णं तु (कामराजमथोच्यते)
कामराजमिदं भद्रे! षड्वर्णं सर्वमोहनम्।।
शक्तिबीजं वरारोहे (चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्)
चतुरक्षररूपन्तु त्र्यक्षरी त्रिपुरा परा।।

पाँच-छः और चार अक्षरों वाले वाग्भव कूट-कामराज कूट तथा शक्तिकूट-समन्वित पञ्चदशाक्षरी विद्या का संकेत वेद में भी बताया गया है (अथर्ववेद देव्यथर्वशीर्ष)—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिः
गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्येषा विश्व मातादि विद्या।।

'इन्द्रो मायाभिः पुररूप ईयते' आदि से ऋग्वेद, भावनोपनिषद् तथा अरुणोपनिषद् आदि में भी इसका संकेत एवं निरूपण किया गया है।

'यो जानाति'—जो जानता है अर्थात् जिसे इन विद्याओं का ज्ञान है, वह जगत् की सृष्टि आदि कार्य के लिये सक्षम है। यह ज्ञान केवल किताबी ज्ञान नहीं है; अपितु इसका अर्थ यह है कि जो सर्वसमर्थ शिवरूप गुरुदेव से षडध्व शोधन पूर्वक इन विद्याओं की विधिवत् दीक्षा लेता है। दीक्षा लेने के बाद नित्यप्रति उसकी उपासना और साधना करने से भी उसे सृष्टि-रचना आदि की शक्ति प्राप्ति होती है। इसका खुलासा अगले श्लोक में किया गया है।

नित्यं यस्तव मातृकाक्षरसखीं सौभाग्यविद्यां जपेत्
संपूज्याखिलचक्रराजनिलयां सायंतनाग्निप्रभाम्।
कामाख्यं शिवनामतत्त्वमुभयं व्याप्यात्मना सर्वतो
दीव्यन्तीमिह तस्य सिद्धिरचिरात् स्यात् त्वत्स्वरूपैकता।। १५ ।।

ननु श्रीविद्याकूटत्रयज्ञानमात्रेण यदि प्रोक्तसिद्धिः स्यात्, तदा सदाशिवोक्तनित्योपासनोपदेशो व्यर्थ एव स्यादित्याशङ्क्योपासकानां साङ्गोपाङ्गनित्योपास्तिकर्तृत्वं प्रतिपादयति— नित्यमिति।

हे सौभाग्यविद्येश्वरि! यस्तव सौभाग्यविद्यां मातृकाक्षरसखीं संपाद्य जपेत्, तस्य इहाचिरात् सिद्धिः स्यात्। परत्र त्वत्स्वरूपैकता स्यात्। किं कृत्वा? अखिलचक्रराजनिलयां संपूज्य। कथंभूताम्? सायंतनाग्निप्रभाम्। पुनः कीदृशीम्? आत्मना कामाख्यं शिवनामतत्त्वं चोभयं व्याप्य सर्वतो दिव्यन्तीमित्यन्वयः। नित्यं प्रतिदिनम्। यः साधकः। तव त्रिपुरसुन्दर्याः मातृकाक्षरसखीं मातृकाक्षरसहायिनीम्, द्वितीयश्लोकव्याख्याने प्रोक्ताक्षमालाविधानसहिताम्। सौभाग्यविद्यां श्रीविद्याम्। जपेत् वाचिकोपांशुमानसेष्वन्यतमप्रकारेण। अक्षरमालया जपस्तु मानसः। एतदुक्तं वायवीयसंहितायाम्—

धिया मन्त्राक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम्।
उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः।। इति।

संपूज्य समाराध्य। अखिलचक्रराजनिलयाम्, अखिलं सम्पूर्णं चक्रराजः श्रीचक्रं निलयः स्थानं यस्याः। एतावता सर्वावरणसहितां संपूज्येत्यर्थः। सायंतनाग्निप्रभां

सायंसंध्योत्थप्रज्वलितवैश्वानरदीप्तिमतीम्। कामाख्यं कामेश्वराभिधम्। शिवनामतत्त्वं शिवानां ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाख्यानां समुदायरूपं सिंहासनम्। उभयं द्वयमपि आत्मना व्याप्य स्वदेहावयवैराच्छाद्य। सर्वतश्चतुर्दिक्षु। दीव्यन्तीं प्रकाशमानाम्। इह भूतले तस्य साधकस्य। सिद्धिर्मनोवाञ्छिता। अचिरात् स्वल्पकालेन। स्यात् भवति। त्वत्स्वरूपैकता तव मूर्तिसायुज्यम्।।१५।।

पूर्णिमा—हे माते त्रिपुरसुन्दरि! सायंकालीन अग्नि के समान देदीप्यमान सम्पूर्ण श्रीचक्र में आवरण तथा अंगदेवताओं और सिंहासन के फलक एवं स्तम्भ-रूप सदाशिव एवं ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र एवं ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त आपकी दिव्य मूर्ति को अपने अंगों में प्रतिस्थापित कर आपकी यथाविधि पूजा करने के उपरान्त जो साधक अक्षमाला से सौभाग्य विद्या अर्थात् मन्त्र का नित्यप्रति जप करता है, उसे शीघ्र ही उपर्युक्त समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा मृत्यु के उपरान्त आपकी सारूप्य मुक्ति भी प्राप्त होती है।।१५।।

विमर्श—१. सम्पूज्याखिलचक्रराजनिलयां—सम्पूर्ण चक्रराज अर्थात् बिन्दुचक्र से भूपुर-पर्यन्त नौ आवरण वाला श्रीचक्र जिसका निलय है अर्थात् घर है। बिन्दु तथा ४३ त्रिकोण, २४ कमलदल तथा तीन भूपुर वाले इस श्रीचक्र में ९ आवरण हैं। इन आवरणों और चक्रों तथा प्रत्येक चक्र की अधीश्वरी शक्ति तथा प्रत्येक चक्र में पूज्य देवताओं का वर्णन 'ललितास्तवमञ्जरी' में किया गया है। ये सभी अंग और आवरणदेवता वस्तुत: भगवती के ही स्वरूप हैं, जैसा कि 'कामकलाविलास' नामक ग्रन्थ में कहा गया है—

सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमते यदा।
तद् देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः सर्वाः।।

जब अनन्त तेजोराशिमयी भगवती त्रिपुरसुन्दरी चक्ररूप धारण करती हैं, उनका तेज:पुञ्ज उनके अवयवरूप किरण बन जाते हैं।

२. 'कामाख्यं शिवनामतत्त्वमुभयं व्याप्यात्मना......' भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के शिव का नाम कामेश्वर हैं।

'शिवनामतत्त्वम्' अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर और सदाशिव का समूह। ब्रह्मा आदि चार देवता भगवती के सिंहासन के पाये (स्तम्भ) हैं तथा सदाशिव उक्त सिंहासन के फलक हैं। कामेश्वर तथा सदाशिव आदि इन पाँचों देवताओं को 'आत्मना व्याप्य' अर्थात् अपने शरीर के अवयवों से आच्छादित करके सभी ओर से दीप्तिमती (सर्वत: दीप्यन्तीम्) तुम्हारी दिव्य मूर्ति की पूजा करके।'

आत्मना व्याप्य उभयम्—सिंहासन-सहित सम्पूर्ण श्रीचक्र अनन्त कोटि योगिनीगण-सेविता तेजोराशिरूपिणी भगवती त्रिपुरा का श्रीविग्रह है। उनके इस श्रीविग्रह की उपचारवती बहिरंग पूजा करने के पूर्व अपने शरीर में सम्पूर्ण श्रीचक्र की भावना करके मानसिक उपचारों से उसके अन्तरंग पूजन का विधान है। अत: 'उभय' पद से भगवती के आन्तरिक और बाह्य—दोनों ही प्रकार के पूजन का संकेत मिलता है।

'मातृकाक्षरसखीं तव सौभाग्यविद्याम्'—मातृकायें सखी हैं जिसकी, उस सौभाग्यप्रदा विद्या का जप करता है। कोई भी राजरानी अपने राजसी सन्निवेश में अकेली नहीं रहती। उसकी अनुगामिनी सखियाँ सदैव उसके साथ रहती हैं। मातृकायें मंत्र के रूप में अभिव्यक्त राजराजेश्वरी ललिता की सखियाँ हैं। अत: सखीरूपिणी मातृकाओं के साथ अर्थात् अक्षमाला से भगवती के सर्वसौभाग्यदायक मन्त्र का जप करता है।

इस श्लोक का सार अर्थ यह है कि दीक्षा और पुरश्चरण के उपरान्त यथा-विधान भगवती त्रिपुरा का अन्तरंग और बहिरंग अर्चन करने के बाद अक्षमाला से उनके मन्त्र का नित्यप्रति जप करने से ही साधक को सारूप्य मुक्ति-सहित सभी सिद्धियाँ और शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

काव्यैः पापठितैः किमल्पविदुषां जोघुष्यमाणैः पुनः
किं तैर्व्याकरणैर्विबोधिततया किं वाभिधानश्रिया।
एतैरम्ब न बोभवीति सुकविस्तावत्तव श्रीमतो
यावन्नानुसरीसरीति सरणिं पादाब्जयोः पावनीम्।। १६ ।।

नन्वितराः सर्वाः सिद्धयो मदाराधनेनैव संभवन्ति, परन्तु केवलं महाकवित्वेप्सूनामल्पविद्यानां मूर्खाणां काव्यव्याकरणाभिधानाभ्यासं विना कथं सिद्धिः स्यादित्याशङ्कायामाह— काव्यैरिति।

हे अम्ब! यावत्ते पादाब्जयोः सरणीं नानुसरीसरीति तावदल्पविदुषां पापठितैः काव्यैः किम्? जोघुष्यमाणैर्व्याकरणैः पुनः किम्? विबोधिततया वाभिधानश्रिया किम्? (किम्) एतैः सुकविर्न भवति। कथंभूतयोः पादाब्जयोः? श्रीमतोः। कथंभूतां सरणिम्? पावनीमित्यन्वयः। काव्यैर्महाकविकृतैर्व्युत्पत्तिकारकैः। पापठितैर्वारंवारं पठितैः किम्। न किमपीत्यर्थः। अल्पविदुषामीषद्व्युत्पन्नानाम्। निर्बुद्धीनामिति यावत्। जोघुष्यमाणैर्बहुधा घोषितैः। पुनः किं प्राग्वत्। तैरभ्यस्तैः। व्याकरणैः शब्दशास्त्रैः। विबोधिततया विज्ञाततया किं प्राग्वत्। वा अथवा। अभिधानश्रिया अभिधानसंपत्त्या। एतैः काव्यव्याकरणाभिधानैः।

अम्ब मातः ! न बोभवीति अतिशयेन न संभवति। सुकविर्विद्वत्परितोषकः। तावत्तदवधि। तव श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। श्रीमतोः परमशोभनयोः। यावत् यदवधि। नानुसरीसरीति अत्यन्तं नानुसरति सरणिं पद्धतिम्। पादाब्जयोश्चरणकमलयोः। पावनीं पवित्राम्।।१६।।

पूर्णिमा—हे माते! अल्प बुद्धि वाले मनुष्य जब तक आपके श्रीचरणों की पद्धति का अनुसरण नहीं करते अर्थात् आपके चरणकमलों की विधिवत् पूजा नहीं करते तब तक काव्यों को बार-बार पढ़ने और व्याकरण के सूत्रों को बार-बार रटने से सुकवि नहीं बन सकते अर्थात् उनके काव्य में वह रसोत्पादकता और भाव-प्रवणता नही आ सकती कि वह काव्य रसिकों के हृदय को प्रभावित कर सके।।१६।।

विमर्श—१. 'काव्यैः पापठितैः' अर्थात् कालिदास, माघ, भारवि-प्रभृति महाकवियों की रचनाओं को बार-बार पढ़ने से। यहाँ 'काव्य' पद कालिदास-प्रभृति कवियों के महाकाव्यों के साथ ही छन्द एवं अलंकार-विषयक ग्रन्थों का भी वाचक है।

२. पापठितैः, जोघुष्यमाणैः, बोभवीति, अनुसरीसरीती'—ये क्रियायें पठ्, घुसिर, भू और 'सृ' धातुओं के यङन्त रूप हैं। किसी क्रिया की वारंवारिता को दर्शाने के लिये उसके यङन्त रूप का प्रयोग किया जाता है।

गेहं नाकति गर्वितः प्रवणति स्त्रीसङ्गमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वत्पादसंसेवनात्
त्वां वन्दे भवभीतिभञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम्।। १७।।

अतः परं देव्युपाकानामनिष्टसंपादकमपीष्टं संपादयतीति प्रतिपादयति—**गेहमिति।** श्लोकार्थः स्पष्ट एव।।१७।।

पूर्णिमा—हे माते! आपके चरण-कमलों की सेवा करने से घर भी स्वर्ग बन जाता है, बड़े से बड़े घमण्डी लोग सिर झुकाने लगते हैं, ईर्ष्यालु शत्रु भी मित्रवत् व्यवहार करते हैं, राजे-महाराजे नौकर के समान वशवर्ती हो जाते हैं, स्त्री-सहवास मोक्षदायक हो जाता है, स्वयं मृत्यु भी वैद्य के समान जीवन की रक्षा करने लगती है, सांसारिक जीवन की सभी बुराइयाँ (दूषण) हितकारी अच्छाइयों के रूप में बदल जाते हैं। सांसारिक दुःखों का विनाश करने वाली हे गिरीशप्रिये गौरि! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।।१७।।

विमर्श—१. बगलामुखी-स्वरूपिणी भगवती श्रीविद्या की उपासना का माहात्म्य बतलाते हुए 'सांख्यायनतन्त्र' में भी कहा गया है—

वादी मूकति रंकति क्षितिपतिः वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शमयति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये! बगलामुखि! प्रतिदिनं कल्याणि! तुभ्यं नमः।।

२. स्त्रीसंगमो मोक्षति—स्त्री का सहवास मोक्षकारक हो जाता है। सामान्य धर्मग्रन्थों में स्त्री-सहवास को आत्मा का पतनकारी मानकर स्त्री को नरक का द्वार कहा गया है, परन्तु यह भगवती श्रीविद्या के कुलधर्म की ही विशेषता है कि इस मार्ग में स्त्री-प्रसंग-सहित समस्त सांसारिक सुखोपभोग योगवत् मोक्षदायक बन जाते हैं; जैसा कि भगवान् शिव ने 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा भी है—

भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि।। (२/२४)
यैरेव पतनं द्रव्यैः सिद्धिस्तैरेव चोदिता।
श्रीकौलदर्शने चापि भैरवेण महात्मना।। (५/४८)

स्त्री-भोगसहित सांसारिक सुखोपभोग किस तरह पतन के बजाय मोक्ष का कारक बन जाता है, यह रहस्य गुरुमुखैकगम्य है। 'स्त्रीसंगमो मोक्षति' कहकर भगवान् दुर्वासा ने इसी कुलधर्म की वरीयता प्रतिपादित की है।

गौरीं गिरीशप्रियाम्—गिरीश अर्थात् भगवान् शिव की प्रिया 'सती' जिन्होंने दक्ष-यज्ञ में भाग लेने के लिये रोके जाने पर भगवान् शिव को अपना दश महाविद्या-रूप दिखाया था और जिन्होंने दक्ष-यक्ष में योगाग्नि से भस्म होकर हिमालय की पुत्री के रूप में जन्म लिया और जिन्हें उनके शंख-कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा के समान गौर-धवलवर्णता के कारण गौरी कहा गया; यथा देवीपुराण में—

योगाग्निना तु दग्धा पुनर्जाता हिमालयात्।
शङ्खकुन्देन्दुवर्णा चेत्यतो गौरीति सा स्मृता।।

गिरीशप्रिया यही भगवती गौरी कामेश्वरप्रिया ललिता महात्रिपुरसुन्दरी भी हैं।

आद्यैरग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरम्ब त्रिलिङ्गात्मभि-
र्मिश्रा रक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्तैस्त्रिभिः।
स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयै-
रुद्भूतं त्रिपुरेति नाम कलयेद्यस्ते स धन्यो बुधः।। १८।।

अतः परं साधकस्य कृतकृत्यतासंपादकं त्रिपुरानामनिरुक्तिमूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः कामकलाक्षरगतिबिन्दुत्रयप्रसृतमन्तर्गतं बहिर्गतं च त्रिकमात्रं प्रकटयति— आद्यैरिति।

हे अम्ब! तैस्त्रिभिरपरं स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयैश्चोत्पन्नं ते त्रिपुरेति नाम यः कलयेत् स बुधो धन्य इत्यन्वयः। आद्यैरकथाद्यैः अग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैः। अग्निरवीन्दूनां बिम्बानां मण्डलानां निलयानि निवासस्थानानि तैः। अम्ब जननि त्रिलिङ्गात्मभिर्मूलाधारहृदयभ्रूमध्यस्थैः स्वयंभूबाणेतरलिङ्गस्वरूपैः। इदं पदत्रयविशेषणम्। मिश्रा......। रक्तसितप्रभैः श्वेतरक्तपाटलवर्णैः। अनुपमैः उपमारहितैः। युष्मत्पदैस्त्वच्चरणैः तैः पूर्वोक्तविशेषणद्वयसहितैः। त्रिभिस्त्रिस्थानगैः। स्वस्या महात्रिपुरसुन्दर्याः। आत्मा कामकलाक्षरं तस्मादुत्पादितानि, कालत्रयं प्रातर्मध्याह्नसायंसंध्यारूपम्, लोकत्रयं स्वर्गमृत्युपातालरूपम्, निगमत्रयं वेदत्रयम्। अवस्थात्रयं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपम्, अमरत्रयं ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपम्। आदिशब्देन पीठत्रयम्, वह्नित्रयम्, इच्छादिशक्तित्रयमित्यादीनि तैः। उद्भूतमुत्पन्नं प्रथमागतम्। त्रिपुरात्रिपुराप्रकारमात्रकारणरूपा। इति एवंविधम्। नाम नाममन्त्रः, तम्। कलयेत् जानीयात्। य उपासकः। ते महात्रिपुरसुन्दर्याः। स गुरुमुखादवगततद्रहस्यः धन्यः कृतकृत्यः। बुधो ज्ञानी।।१८।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में 'त्रिपुरा' नाम की महिमा का निरूपण किया गया है। महर्षि दुर्वासा कहते हैं कि हे माते! सद्‌गुरु से दीक्षा-प्राप्त वह साधक धन्य है, जो यह जानता है कि 'अकथ' अक्षरों की प्रमुखता वाले त्रिकोण, अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमण्डलत्रय, मूलाधार-अनाहत एवं भ्रूमध्य में स्थित स्वयम्भू, बाण और इतर-लिङ्ग तथा रक्त, शुक्ल एवं मिश्र वर्णों वाले चरणत्रय आपके त्रिपुरा नाम के द्योतक एवं वाचक हैं तथा आपके स्वरूप कामकलाक्षर के तीनों बिन्दुओं से ही तीनों लोकों, तीनों वेदों, तीनों देवों तथा तीनों अवस्थाओं आदि सभी त्रितयात्मक वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है।।१८।।

विमर्श—विशेषार्घ्य-पात्र की स्थापना के लिये भूमि पर बनाया जाने वाला अधोमुख त्रिकोण जिसकी तीनों रेखाओं पर १६-१६ के क्रम से स्वर और व्यञ्जनवर्ण लिखे जाते हैं उसे 'अकथ' त्रिकोण कहते हैं।

त्रयसमुच्चय—तीन-तीन वस्तुओं का समूह; जैसे—भूत, वर्तमान और भविष्य-रूप तीन काल। ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र-संज्ञक तीन देव। ऋग्-यजुः और साम—ये तीन वेद। जागृति-स्वप्न और सुषुप्ति-रूप तीन अवस्थायें। संसार में तीन-तीन के समुच्चय के रूप में जितनी भी वस्तुयें हैं, उन सबकी उत्पत्ति जिस महाशक्ति से हुई है, वह महाशक्ति इस त्रय-समुच्चय की जननी होने के कारण 'त्रिपुरा' नाम से विख्यात है और तीन-तीन वस्तुओं के समस्त त्रयसमुच्चय 'त्रिपुरा' के द्योतक और अभिव्यञ्जक हैं। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए कालिकापुराण में कहा गया है—

त्रिविधा कुण्डली शक्तिः त्रिदेवानां च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात् तु त्रिपुरा मता।।

जो त्रिवलया कुण्डलिनी के रूप में सभी प्राणियों में विद्यमान है, जिन्होंने सृष्टिकार्य के लिये तीन देवताओं का आविर्भाव किया तथा जिनका प्रत्येक रूप तीन-तीन रूपों वाला है, वे भगवती त्रिपुरा हैं। इतना ही नहीं—

त्रिकोणं मण्डलं यस्याः भूपुरञ्च त्रिरेखात्मकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरा प्रोक्ता तथा रूपं त्रयं पुनः।।

उनका पूजन-मण्डल भी त्रिकोणाकार है, त्रिकोणाकार पूजन-मण्डल का भूपुर भी तीन रेखाओं वाला है तथा जिनका मन्त्र भी तीन अक्षरों वाला अर्थात् त्रिकूटात्मक है और इनके रूप भी तीन (बाला-सुन्दरी और भैरवी) हैं।

आद्यो जाप्यतमार्थवाचकतया रूढः स्वरः पञ्चमः
सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया वर्णः पवर्गान्तकः।
वक्तृत्वेन महाविभूतिसरणिस्त्वाधारगो हृद्गतो
भ्रूमध्यस्थित इत्यतः प्रणवता ते गीयते चागमैः।। १९।।

अतः परं त्रितयमात्रकारणभूतायाः श्रीकामकलात्मकमहात्रिपुरसुन्दर्या वाच्यवाचक-वक्तृत्वेन प्रणवाक्षरत्रयस्य मूलाधारहृदयभ्रूमध्यवर्तित्वेन कूटत्रयस्य प्रणवत्वं प्रतिपादयति—**आद्य इति।**

हे अम्ब! अतः कारणाद् आगमैः प्रणव इति गीयते। कुतः अकारोकार-मकारैर्वाच्यवाचकवक्तृरूपैः आधारहृदयभ्रूमध्यगैः कूटत्रयसाम्यता वेदैर्गीयत इत्यन्वयः। आद्योऽकारः। जाप्यतमार्थवाचकतया अतिशयेन जाप्या इति जाप्यतमा मूलविद्या तस्या अर्थः स्वरूपं तस्य वाचकः 'अ-उ-म्' इति ब्रह्म इति श्रुतिः। इति परब्रह्मात्मिकां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमेव वदति 'अकारो विष्णुरुच्यते' इत्यागमाभिधानेन व्यापकतेति विश्वव्यापिकां तामेव वदति।

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वेणुनादसमारम्भादकरोद्धि वशं जगत्।।

इति तन्त्रराजवचनात्।

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।

इति संकेतपद्धतिवचनात्।

शिवशक्त्योरभेदेन तामेव वदति—

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।। इति।

महार्थमञ्जर्यामपि—'आलेख्याविशेष इव गजवृषभयोः प्रतिभासो यथैकस्मिन्नपि परमार्थे शिवशक्तिविभागकल्पनां कुर्मः' इति। अकारस्य परमार्थस्वरूपिण्याः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या वाचकतया रूढः प्रसिद्धः। अत एव वाच्यस्वरः पञ्चम उकारः सर्वोत्कृष्टतां प्राप्य वाचकतया सर्वेभ्य उत्कृष्टतमार्था तामेव वदति तेन वाचकतावर्णः पवर्गान्तको वर्णो व्यञ्जनं पवर्गान्तको मकारः कर्तृत्वेन वक्तृत्वं महत्त्वादेव। एतेषामकारोकारमकाराणां वाच्यवाचकत्वं कामकलाक्षरमूलकत्वेन त्रिकात्मकतया सङ्केतितं भवति। महाविभूतिसरणिः महाविभूतिर्महदैश्वर्यं तस्य सरणिः प्रापकः। तु पुनः। आधारगो मूलाधारगताग्निचक्रगः। हृद्गतः सूर्यचक्रगः। भ्रूमध्यस्थितः सोमचक्रग इत्यमुना प्रकारेण मूलाधारहृदय-भ्रूमध्यगतकूटत्रयेणैकवाक्यताकारणता। प्रणवता ॐकाररूपता। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः इति। गीयते उच्चैरुद्घोष्यते। रुद्रयामले—

उमेति परमा शक्तिः पूर्वभावमुपेयुषी।
अध्युष्टवलयाकारा शिवानन्ता मदद्रवा। इति।।१९।।

पूर्णिमा—प्रणव अर्थात् 'ॐ'कार के घटक तीनों वर्ण—'अ'कार, 'उ'कार तथा 'म'कार वाच्य-वाचक एवं वक्तृ रूप से मूलाधार-अनाहत और आज्ञाचक्र में स्थित तुम्हारे मन्त्रों के तीनों कूटों के वाचक हैं, ऐसा वेदों में गान किया गया है।।१९।।

विमर्श—आद्यो जाप्यतमार्थवाचकः—आद्य अर्थात् प्रणव (ॐ) का प्रथम वर्ण 'अ'कार 'जाप्यतमार्थवाचकतया' अर्थात् अतिशय रूप से जपने-योग्य तुम्हारी मूल विद्या (अर्थात् पञ्चदशाक्षरी विद्या) का वाचक है।

आगम-कोष के अनुसार 'अ'कार विष्णु का वाचक है और विष्णु का अर्थ है—सर्वव्यापक। अतः 'अ'कार से सर्वव्यापिका महात्रिपुरसुन्दरी का ही बोध होता है; क्योंकि विष्णु ही कृष्ण हैं और भगवान् कृष्ण भगवती ललितामहात्रिपुरसुन्दरी हैं; जैसा कि 'तन्त्रराजतन्त्र' में कहा गया है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।

नन्दिकेश्वर ने भी कहा है—'अ'कारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः। 'अ'कार प्रकाशरूप परमशिव है। शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है अर्थात् जो परमतत्त्व शिव है, वही परमतत्त्व शक्ति भी है। अतः 'अ'कार पराशक्तिरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ही वाचक है।

स्वरः पञ्चमः—वर्णमाला का पाँचवाँ स्वर 'उ'कार सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त सबसे उत्कृष्ट पद भगवती त्रिपुरा का ही वर्णन करता है।

पवर्गान्तकः पञ्चमवर्णः—'प'वर्ग का पञ्चम वर्ण अर्थात् 'म'कार 'वक्तृत्वेन' अर्थात् वक्तृत्व रूप से 'महाविभूतिसरणिः' है अर्थात् बड़े-बड़े ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला है।

आधारगो हृद्गतो भ्रूमध्यस्थितः—मूलाधार-अनाहत और भ्रूमध्य में स्थित तीनों कूटों के साथ अकार, उकार और 'म'कार की साम्यता के कारण महात्रिपुरसुन्दरी की प्रणवता स्पष्ट है।

गायत्री सशिरा तुरीयसहिता सन्ध्यामयीत्यागमै-
राख्याता त्रिपुरे त्वमेव महतां शर्मप्रदा कर्मणाम्।
तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरपि च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी
कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः।। २०।।

अतः परं गायत्र्यादिसर्वदर्शनाधिदेवतात्वेन श्रीमहात्रिपुरासुन्दरीमेव प्रतिपादयति—**गायत्रीति।**

हे त्रिपुरे! संध्यामयी गायत्री च परं तत्तदर्शनमुख्यशक्तिरपि त्वमेवेति आगमैराख्याता। कथंभूता? गायत्री तुरीयसहिता। सशिरा च। पुनः कथंभूता? महतां कर्मणां शर्मप्रदा इत्यन्वयः। गायत्री प्रसिद्धा। सशिराः शिरसा सह वर्तमाना। तुरीसहिता तुरीयं प्रणवः। तुरीयबीजस्य प्रणवताष्टमश्लोके प्रतिपादिता। कार्यकारणयोरभेदात् कार्यभूतप्रणवस्य कारणभूततुरीयाक्षरस्य प्रणवत्वमुक्तम्। सन्ध्यामयी त्रिकालसंध्यारूपा। आगमैर्वेदैः। अथवा आगमैरागमज्ञैः। आख्याता प्रसिद्धीकृता। अत्र गायत्र्या मूलविद्यात्मकता त्रिपदीत्वेन संध्यात्रयस्य कालत्रयत्वेन गायत्र्याश्च तद्रूपत्वे 'सशिरा तुरीयसहिता' इत्यनेन प्रणवादिक-शिरोन्तिका गायत्री पञ्चमीविद्यात्मिकापि सूचिता 'त्रिकूटमेककूटं तु त्रिकूटे पञ्चकूटता' इति वामकेश्वरवचनात्। त्रिपुरे त्रितयगात्रस्वरूपे। त्वमेव मूलविद्यैव। महतां यागादीनाम्। शर्मप्रदा सुखरूपफलप्रदा। कर्मणां क्रियाणां तत्तद्दर्शनमुख्य–शक्तिस्तद्दर्शनाधिदेवता। अपि च पुनरपि। त्वमेव त्वं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्येव। ब्रह्म वेदान्तिनाम्। कर्म मीमांसकानाम्। ईश्वरी शाक्तानाम्। कर्ता नैयायिकानाम्। अर्हंश्चार्वाकाणाम् (?)। पुरुषः सांख्यानाम्। हरिर्वैष्णवानाम्। सविता सौराणाम्। बुद्धो बौद्धानाम्। शिवः शैवानाम्। त्वं त्वमेव। गुरुः सर्वपूज्यत्वाद्गणेशः सर्वेषां त्वमेवेत्यर्थः।।२०।।

पूर्णिमा—हे त्रिपुरे! 'सशिरा' अर्थात् 'ॐकार'-युक्ता संध्यामयी गायत्री तुम ही हो। बड़े-बड़े यज्ञादि से कल्याणकारी फल देने वाली भी तुम ही हो। वेदान्त आदि सभी दर्शनों की अधिदेवता भी तुम ही हो। तुम ही वेदान्तियों की 'परंब्रह्म' हो, मीमांसकों का 'कर्म' हो, नैयायिकों की 'कर्ता' हो, वैष्णवों की 'विष्णु' हो, सांख्य की 'पुरुष' हो, शैवों की 'शिव' हो, योग की 'ईश्वर' हो, बौद्धों की 'बुद्ध' हो, जैनों

की 'अर्हत्' हो, सौरों (सूर्य उपासकों) की 'सविता' हो, शाक्तों की 'शक्ति' हो तथा सभी सम्प्रदायों के लिये प्रथम पूज्य 'गणेश' भी तुम ही हो॥२०॥

विमर्श—'त्रिपुरा' पद की व्याख्या उपर्युक्त १८वें श्लोक में की जा चुकी है। इस श्लोक में त्रिपदा गायत्री और महात्रिपुरसुन्दरी की समरूपता को रेखांकित किया गया है। 'सप्तशती' स्तव (ब्रह्मा-कृत स्तुति) में भी कहा गया है—'त्वमेव संध्या सावित्री त्वमेव जननी परा।' गायत्री और पञ्चदशी के साम्य की विस्तृत विवेचना 'वरिवस्यारहस्य' में द्रष्टव्य और पठनीय है।

तुरीय-सहिता—तुरीय अर्थात् चतुर्थ अक्षर 'ई'कार के साथ। यह तुरीय बीज 'प्रणव' है। तुरीय पद से तुरीया सन्ध्या और चतुष्पदा गायत्री की ओर भी संकेत किया गया है।

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरपि—वेदान्त आदि दर्शनों के अधिदेवता भी। चूंकि इन सभी दर्शनों के अधिदेवता भगवती ललिता महात्रिपुरीसुन्दरी के ही अभिव्यञ्जक हैं, अत: श्रीयन्त्र पर बौद्ध, वैदिक, शैव, सौर, वैष्णव और शाक्त दर्शनों की पूजा का विधान है।

अन्नप्राणमन:प्रबोधपरमानन्दै: शिर:पक्षयुक्
पुच्छात्मप्रकटैर्महोपनिषदां वाग्भि: प्रसिद्धीकृतै:।
कोशै: पञ्चभिरेभिरम्ब भवतीमेतत्प्रलीनामिति
ज्योति:प्रज्वलदुज्ज्वलात्मचपलां यो वेद स ब्रह्मवित्॥ २१॥

अत: परं कोशपञ्चकद्वारा भगवत्या विश्वशरीरे विलीनत्वं ज्ञातुर्ब्रह्मज्ञत्वं प्रतिपादयति—**अन्नप्राणेति**। हे अम्ब! एभि: पञ्चभि: कोशै: कृत्वा भवतीमेतद्विश्वशरीरे प्रलीनां यो वेद स ब्रह्मविद्भवति। एभि: कै:? अन्नप्राणमन:प्रबोधपरमानन्दै:। कथंभूतै:? शिर:पक्षयुक्पुच्छात्मप्रकटै:। पुन: किंभूतै:? महोपनिषदां वाग्भि: प्रसिद्धीकृतैरित्यन्वय:। अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयै:। अन्नं शिर:, प्राणमनसी पक्षौ, प्रबोध: पुच्छम्, परमानन्द आत्मा। एभि: कृत्वा प्रकटै: स्फुटै:। महोपनिषदां चतुर्वेदशिरसाम्। वाग्भिर्वाक्यै:। प्रसिद्धीकृतै: ख्यापितै:। कोशैरुक्तरूपै:। पञ्चभि: पञ्चप्रकारै:। एभिरुक्तविशेषणसहितै:। अम्ब मात:। भवतीं त्वाम्। एतत्प्रलीनाम् एतस्मिन् विश्वशरीरे प्रलीनां प्रविष्टाम्। इति अमुना प्रकारेण। ज्योति:प्रज्वलदुज्ज्वलात्मचपलां ज्योतिष: प्रज्वलदिवोज्ज्वलात्मना चपलां चञ्चलाम्। य उपासक:। वेद जानाति स लब्धोपदेश: ब्रह्मवित् तत्त्वज्ञ इति॥२१॥

पूर्णिमा—हे माते! सद्गुरु से सविधि दीक्षा-प्राप्त वह साधक ही वस्तुत: ब्रह्मज्ञानी है, जिसने यह जान लिया है कि अन्न-प्राण-मन-विज्ञान और आनन्द—

पञ्चकोषों से समन्वित तथा उपनिषदों में पुच्छ एवं पक्ष (पंख)-युक्त 'हंस' के रूप में रूपायित आत्मरूप परंज्योति तुम ही हो, जो इस व्यष्टि और समष्टि शरीर में व्याप्त होकर चपला के समान दीप्तिमती है।।२१।।

विमर्श—उपनिषदों में कहा गया है कि यह व्यष्टि शरीर १. अन्न, २. प्राण, ३. मन, ४. विज्ञान और ५. आनन्द-संज्ञक पाँच (५) कोशों से निर्मित है। आकाश आदि पञ्चमहाभूतों से निर्मित तथा अन्न से परिपुष्ट स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश है। २. हाथ-पैर आदि पाँच कर्मेन्द्रियों से युक्त पञ्च-प्राण ही प्राणमय कोश है, जो अन्न आदि से परिपुष्ट होकर समस्त शारीरिक कार्यों का सम्पादन करता है। ३. नेत्र-श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों सहित 'मन' की संज्ञा मनोमय कोश है, जो उपर्युक्त दोनों कोशों में परिव्याप्त होकर सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प करता है। ४. ज्ञानेन्द्रियों के साथ वृत्ति से युक्त बुद्धि ही कर्तृत्व स्वभाव-सम्पन्न (अहंकार-युक्त) होकर विज्ञानमय कोश कही जाती है। यही कोश मनुष्य के जन्म-मरण का कारण है। ५. आनन्दस्वरूप आत्मा के प्रतिबिम्ब से चुम्बित तथा तमोगुण से प्रकट वृत्ति की संज्ञा आनन्दमय कोश है।

इन पाँच कोशों से निर्मित मानव-शरीर को उपनिषदों में पक्ष (पंख) और पुच्छ (दुम)-युक्त हंस के रूप में रूपायित किया गया है। अन्नमय कोश इस 'हंस' का सिर है। प्राणमय और मनोमय कोश इस हंस के दो पक्ष अर्थात् पंख हैं। विज्ञानमय कोश इसका पुच्छ है। आनन्दमय कोश इसकी आत्मा है। यह आत्मा ही ललिता है—'ललिता वै आत्मा'; जो पञ्चकोशान्तर-स्थिता है।

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि सद्गुरु से दीक्षा-प्राप्त साधक निरंतर साधना करके स्वयं देवीस्वरूप होकर सम्पूर्ण संसार में देवी ललिता का दर्शन करने लगता है तब ही वह ब्रह्मज्ञानी कहे जाने का अधिकारी होता है।

सच्चित्तत्त्वमसीतिवाक्यविदितैरध्यात्मविद्याशिव-
ब्रह्माख्यैरतुलप्रभावसहितैस्तत्त्वैस्त्रिभिः सद्गुरोः।
त्वद्रूपस्य मुखारविन्दविवरात् संप्राप्य दीक्षामतो
यस्त्वां विन्दति तत्त्वतस्तदहमित्यार्ये स मुक्तो भवेत्।। २२।।

पूर्वं 'श्रीमातः' इत्यारभ्य 'अन्नप्राण' इत्यन्तैरेकविंशतिश्लोकैर्यद्रहस्यं प्रतिपादितं तत्र सद्गुरुतः प्राप्तदीक्षस्यैवाधिकारो नान्यस्येति सद्गुरोः सकाशाद्दीक्षाग्रहणस्यावश्यकतां तत्फलसिद्धिं च प्रतिपादयति—**सच्चित्तत्त्वमसीतीति।**

हे आर्ये! सद्गुरोर्मुखारविन्दविवरात् त्रिभिस्तत्त्वैः सह दीक्षां प्राप्य यस्त्वां विन्दति,

सोऽतः 'तदहम्' इति तत्त्वतो मुक्तो भवेत्। कथंभूतस्य सद्गुरोः? त्वद्रूपस्य। कथंभूतैस्तत्त्वैः। सच्चित्तत्त्वमसीतिवाक्यविदितैः। कैः? अध्यात्मविद्याशिवब्रह्माख्यैः। पुनः कीदृशैः। अतुलप्रभावसहितैः। इत्यन्वयः। सच्चित्तत्त्वमसीतिवाक्यविदितैः सत् ब्रह्म, चित् माया। इत्यनेनात्मतत्त्वं लभ्यते स्थूलदेहशोधकत्वात्। तत् मायातीतम् इत्यनेन विद्यातत्त्वं लभ्यते सूक्ष्मदेहशोधकत्वात्। त्वं स्वयम्, इत्यनेन शिवतत्त्वं लभ्यते। परदेहशोधकत्वात्। असि इत्यनेन सर्वज्ञत्वं लभ्यते। समष्टिदेहशोधकत्वात्। अध्यात्मशिवब्रह्माख्यैः। अर्थः स्पष्ट एव। अतुलप्रभावसहितैर्देहचतुष्टयशुद्धिद्वारा जीवन्मुक्तिप्रदैः। तत्त्वैर्यथार्थैः। त्रिभिस्त्रिधा भिन्नैः। सद्गुरोः सत्सम्प्रदायवतस्त्वद्रूपस्य पूर्णाभिषेकप्रभावेण देवीतादात्म्यसिद्धस्य। मुखारविन्दविवरात् वक्त्राम्बुजद्वारा। संप्राप्य लब्ध्वा। दीक्षां पूर्णाभिषेकाख्याम्। अतो दीक्षाप्राप्त्यनन्तरम्। य उपासकः। त्वां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीम्। विन्दति जानाति। तत्त्वतो यथार्थतः। तत् ब्रह्म। अहमहमेव इति भावनया। आर्ये सर्वोत्कृष्टे। स संप्राप्तदीक्षः। मुक्तो जीवन्मुक्तः। भवेत् स्यात्।।२२।।

पूर्णिमा—हे आर्ये! अत्यन्त प्रभाव वाले सत्-चित्-तत्त्वमसि—इन वेदवाक्यों से प्रसिद्ध अध्यात्म-विद्या एवं शिव-संज्ञक तत्त्वत्रय से युक्त तत् स्वरूप अर्थात् ब्रह्म-स्वरूप गुरुदेव के मुख-कमल से पूर्णाभिषेक-दीक्षा प्राप्त जो साधक यह अनुभव करता है कि मैं स्वयं ही वह ब्रह्म हूँ, वह साधक तत्त्वतः जीवनमुक्त हो जाता है।।२२।।

विमर्श—तद्रूपस्य सद्गुरोः मुखारविन्दात्—'तत्' अर्थात् ब्रह्म। अतः 'तद् रूप' का अर्थ हुआ—ब्रह्मस्वरूप। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी स्वयं ब्रह्म-स्वरूपिणी हैं, जैसा कि आथर्वण श्रुति में उन्होंने स्वयं कहा है—'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी'। अतः शाक्त दृष्टि से 'तद्रूपस्य' का अर्थ हुआ—देवी महात्रिपुरसुन्दरी-स्वरूप गुरुदेव। तन्त्रान्तर में भी कहा गया है कि जिस तरह घट-कलश और कुम्भ—ये तीन पद एक ही वस्तु के वाचक हैं, उसी तरह मन्त्र-गुरु और देवता—ये तीनों पद भी एक ही सत्ता के अभिद्योतक हैं। पञ्चदशाक्षरी विद्या के छः मन्त्रार्थों में से एक 'कौलिकार्थ' का भी यही तात्पर्य है। अतः 'तद्रूपस्य सद्गुरोः' का अर्थ है—महात्रिपुरसुन्दरी-स्वरूप गुरुदेव।

ऐसे सद्गुरु से दीक्षा अर्थात् पूर्णाभिषेक दीक्षा। श्रीविद्या-साधना क्रम में पूर्णाभिषेक के समय १. प्रज्ञानं ब्रह्म, २. अहं ब्रह्मास्मि, ३. अयमात्मा ब्रह्म और ४. तत्त्वमसि—इन चार वेदवाक्यों से यह उपदेश दिया जाता है कि तुम ही ब्रह्म हो। यह आत्मा ही ब्रह्म है। अतः तुम यह अनुभव करो कि मैं ही ब्रह्म हूँ।

सिद्धान्तैर्बहुभिः प्रमाणगणितैरन्यैरविद्यातमो
नक्षत्रैरिव सर्वमन्धतमसं तावन्न निर्भिद्यते।
यावत्ते सवितेव संमतमिदं नोदेति विश्वान्तरे
जन्तोर्जन्मनिवारणैकभिदुरं श्रीशाम्भवि श्रीशिवे।। २३।।

ननु मुक्तिप्रदा अल्पायाससाध्या न्यासपूजाविस्ताररहिता अन्ये शैववैष्णवसौरादयो बहवो मार्गाः सन्ति, तर्हि बह्वायाससाध्ये न्यासपूजाद्यपारे ममास्मिन् मार्गे कथमेतावानादरः क्रियत इत्याक्षिप्तवतीं भगवतीं सविनयमुत्तरयति— सिद्धान्तैरिति।

हे श्रीशाम्भवि! हे श्रीशिवे! अन्यैर्बहुभिः सिद्धान्तैरविद्यातमस्तावन्न निर्भिद्यते यावद् इदं सम्मतं विश्वान्तरे न उदेति (तावदन्यैर्बहुभिः सिद्धान्तैरविद्यातमो न निर्भिद्यते)। कैः किमिव? नक्षत्रैः सर्वमन्धतमसमिव। कथंभूतमिदं ते सम्मतम्। सवितेव। कथंभूतम्। जन्तोर्जन्मनिवारणैकभिदुरम्। कथंभूतैः? सिद्धान्तैः। प्रमाणगणितैरित्यन्वयः। सिद्धान्तैस्तत्तद्दर्शनाङ्गीकृतैः। बहुभिर्नानाविधैः। प्रमाणगणितैः प्रमाणानि अनुमानादीनि तैर्गणितैः साधितैः। अन्यैः तार्किकाद्यैः। अविद्यातमः अविद्या अज्ञानं तदेव भ्रमोत्पादकत्वात्तमः। नक्षत्रैः तारकाद्यैः। इव तद्वत्। सर्वमशेषम्। अन्धतमसं महान्धकारः। तावत् तदवधि। न निषेधे। निर्भिद्यते निःशेषं दूरीक्रियते। यावत् यदवधि। ते तव। सवितेव सूर्यसदृशम्। सम्मतं सर्वमतोत्तमम्। इदं (विश्वान्तरे स्वोदरे) नोदेति प्रचारं न प्राप्नोति। विश्वान्तरे विशेषेण स्वान्तरे स्वस्य जीवन्मुक्त्यपेक्षस्य अन्तरे हृदये। जन्तोः सांसारिकस्य। जन्मनिवारणैकभिदुरं आगामीनि जन्मानि तेषां निवारणे एकम् अद्वितीयं भिदुरं समर्थम्। श्रीशाम्भवि इदं हेतुगर्भं संबोधनम्। अनेन षडन्वयशाम्भवपर्यन्तं ज्ञानं त्वन्मतनिर्वाहक-मित्युक्तम्। श्रीशिवे श्रीकल्याणरूपे।।२३।।

पूर्णिमा—हे शिवे! जिस तरह हजारों ताराओं और नक्षत्रों के टिमटिमाते प्रकाश के बावजूद रात्रि का निविड अन्धकार सूर्योदय के बिना दूर नहीं होता, उसी तरह हे शाम्भवि! मुमुक्षु-जनों के अज्ञान अन्धकार की समाप्ति अनेकानेक प्रमाणों और सिद्धान्तों के ज्ञान से नहीं; अपितु आवागमन के निवारक एवं सर्वोत्तम सिद्धान्तरूप तुम्हारी उपासनारूपी सूर्य के प्रकाश से होती है।।२३।।

विमर्श—१. न्याय-दर्शन में निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिये जो माध्यम स्वीकार किये गये हैं, उन्हें पारिभाषिक रूप से 'प्रमाण' कहा जाता है। 'प्रमाण' के चार भेद हैं—१. प्रत्यक्ष प्रमाण, २. अनुमान प्रमाण, ३. उपमान प्रमाण और ४. शब्द प्रमाण।

२. 'सिद्धान्तों' का तात्पर्य न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तथा पूर्व एवं उत्तर-

मीमांसा (वेदान्त) इत्यादि छः दर्शनों तथा इनके द्वैत-अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत आदि अवान्तर भेदों से है।

३. शाम्भवी—शाम्भवी का एक अन्य अर्थ है—शाम्भवों की माता। श्रीविद्या-मत में आम्नायभेद से ६ प्रकार के शाम्भव माने गये हैं। यथा—पूर्वाम्नाय में दीपेश्वर शाम्भव। दक्षिणाम्नाय में संवर्तेश्वर शाम्भव। पश्चिमाम्नाय में चतुरन्वय शाम्भव। उत्तराम्नाय में हंसेश्वर शाम्भव। ऊर्ध्वाम्नाय में परेश्वर शाम्भव और उपाम्नाय में महाविद्येश्वर शाम्भव। इन षड्विध शाम्भवों की आराध्या होने के कारण भगवती ललिता को शाम्भवी कहा गया है।

आत्मासौ सकलेन्द्रियाश्रयमनोबुद्ध्यादिभिः शोचितः
कर्माबद्धतनुर्जनिं च मरणं प्राप्नोति यत् कारणम्।
तत्ते देवि महाविलासलहरीदिव्यायुधानां जय-
स्तस्मात्त्वां गुरुमभ्युपेत्य कलयेत् त्वामेव चेन्मुच्यते।। २४।।

ननु अविद्याविनाशकमात्मानुसन्धानं सकलसंमतं भवति तर्हि जीवन्मुक्तिवाञ्छकैः 'अथात्मा वाऽरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः साक्षात्कर्तव्यः' इत्युपनिषद्वाक्यं प्रमाणीकृत्य निरन्तरमात्मानुसन्धानमेव कर्तव्यम्, किमर्थमस्मिन्नतिदुर्घटे मन्मतेऽत्यादरः क्रियत इत्याग्रहवतीं भगवतीं मुनिरुत्तरयति—**आत्मासाविति।**

हे देवि! तस्मात् कारणात् त्वां गुरुमभ्युपेत्य त्वामेव चेत्कलयेत् तदा मुच्यते। यस्मादसावात्मा जनिं मरणं च प्राप्नोति तत्कारणं ते महाविलासलहरीदिव्यायुधानां जयः। कथंभूतोऽसावात्मा? सकलेन्द्रियाश्रयमनोबुद्ध्यादिभिः शोचितः। पुनः कथंभूतः? कर्माबद्धतनुः। इत्यन्वयः। आत्मा जीवदशाविष्टः। असौ संसारादुपरक्तः। सकलेन्द्रियाश्रय-मनोबुद्ध्यदिभिः सकलानां कर्मेन्द्रियाणां ज्ञानेन्द्रियाणां च आश्रयस्तदधीनतया मनोबुद्ध्यादयस्तैः। शोचितः शुचं प्रापितः। कर्माबद्धतनुः कर्मभिः सांसारिकैर्निषिद्धानिषिद्धैः, आबद्धा जडीकृता तनुः संस्कारः। जनिरुत्पत्तिः, ताम्। च समुच्चये। मरणं देहत्यागः, तम्। प्राप्नोति प्रयाति। यत्कारणं यन्निमित्तम्। तद्वक्ष्यमाणम्। ते भगवत्याः। देवि प्राग्वत्। महाविलासलहरीदिव्यायुधानां जयो महाविलासोऽभिनवनवविधशृङ्गारसौन्दर्यार्णवस्तस्य लहर्यस्तरङ्गास्तद्वद्दिव्यान्यप्रतिहतसामर्थ्यवन्त्यायुधानि पाशाङ्कुशधनुर्बाणाख्यानि तेषाम्। जयः प्रतापो मोहनवश्यमारणस्तम्भनादीनि। तस्मात् कारणात्। त्वां त्वत्तादात्म्यसिद्धम्। गुरुं देशिकम्। अभ्युपेत्य अत्याराध्य। कलयेत् प्रभजेत्। त्वामेव श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमेव। चेत्तदा। मुच्यते मोक्षो लभ्यते।।२४।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में यह तथ्य रेखांकित किया गया है कि मोक्ष-प्राप्ति के

निमित्त मुमुक्षु-जनों के लिये अविद्या-नाशक आत्मस्वरूप-चिन्तन के साथ ही भगवती ललिता की रसभीनी उपासना भी अनिवार्य है। महर्षि दुर्वासा कहते हैं—

हे देवि! शृंगार आदि नौ रसों से परिपूर्ण यह संसार-सागर तुम्हारा ही महाविलास है। इस संसार-सागर की लहरें अत्यन्त अप्रतिहत सामर्थ्य-शालिनी हैं। अतएव निसर्गत: शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला यह आत्मा अपनी देहात्मबुद्धि के फलस्वरूप इन्द्रियों का आश्रय लेकर मन-बुद्धि आदि अन्त:करणचतुष्टय के संस्कारों के अनुरूप विभिन्न योनियों में फंसकर बार-बार जन्म लेने और बार-बार देह त्यागने का दु:ख भोगता है। वह इस संसार-सागर की लहरों के जबर्दस्त थपेड़ों के कारण चाहकर भी इस संसार-सागर से उबर नहीं पाता और इसी में डूबता और उतराता रहता है। इस स्थिति में संसार-सागर से उबरने का एक ही उपाय है कि वह तुम्हें ही गुरूरूप में प्राप्त कर तुम्हारी साधना और उपासना करके तुम्हारे उन दिव्य आयुधों का संरक्षण प्राप्त करे, जो इस संसार-सागर की लहरों के समान ही अतुल प्रतापी और सामर्थ्यशाली हैं।।२४।।

विमर्श—इस श्लोक में दार्शनिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य की बहुरंगी छटा बिखरी हुई है।

१. आत्माऽसौ—'यह आत्मा' कहकर महर्षि दुर्वासा ने वेद-वाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म' की ओर संकेत किया है कि यह आत्मा ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मस्वरूप वाला है।

२. महाविलासलहरी—यह संसार ब्रह्मरूपिणी भगवती त्रिपुरा का लीला-विलास है। यह ब्रह्म सत्-चित् तथा आनन्द स्वभाव वाला है। वह सत्य है, शिव है, सुन्दर है। उपनिषदों में इसे 'रसमय' कहा गया है। सृष्टि के पूर्व वह एक ही था। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था—'एकमेवाद्वितीयो नास्ति'। उसमें देखने की स्फुरणात्मक क्रिया शक्ति उत्पन्न हुई। चूंकि उस समय उस अद्वितीय के अतिरिक्त कुछ और नहीं था; इसलिये उसने स्वयं को देखा (तदेव ऐक्षत्)। स्वयं को देखकर उसमें क्रीडा करने की इच्छा उत्पन्न हुई (सोऽकामयत्)। चूंकि वह अकेले ही नहीं खेल सकता था; अतएव उसने अनेक रूप धारण किये (एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय)। इस तरह वह रसमय सौन्दर्यरूप ब्रह्म ही विश्व-सृष्टि के रूप में प्रकाशित हुआ है। अत: यह संसारसागर ब्रह्मरूपिणी त्रिपुरा का लीला-विलास है।

३. (ॐ) दिव्यायुधानां जय:—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के चारो हाथों में (दक्षिणावर्त क्रम से) इक्षु (गन्ना) का धनुष, पाँच पुष्पों के बाण, अंकुश और पाश हैं। तन्त्रराजतन्त्र में बताया गया है कि इक्षु-धनु मन है, पाश राग है, अंकुश द्वेष है

तथा शब्द-स्पर्श आदि पञ्चतन्मात्रायें पाँच पुष्पबाण हैं। अन्य तन्त्रग्रन्थों में अन्य प्रकार से भी इन आयुधों की व्याख्या की गई है। भगवती के अर्चन में आठवें क्रम (आवरण) में इन आयुधों की अर्चना करने के बाद नवम क्रम में भगवती की पूजा की जाती है। उनके ये आयुध संसारसागर की लहरों से अधिक शक्तिशाली हैं।

नानायोनिसहस्रसंभववशाज्जाता जनन्यः कति
प्रख्याता जनकाः कियन्त इति मे सेत्स्यन्ति चाग्रे कति।
एतेषां गणनैव नास्ति महतः संसारसिन्धोर्विधे-
र्भीतं मां नितरामनन्यशरणं रक्षानुकम्पानिधे।। २५ ।।

अतः परं भगवान् दुर्वासा महामुनिः संसारसिन्धौ निमज्जनोन्मज्जनाभ्यामतिदुः-खितानां किञ्चिदुत्पन्नज्ञानानां मादृशानामुपरि कृपाविष्टः सविनयं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं प्रार्थयति— **नानायोनीति।**

हे अनुकम्पानिधे इति कारणात् मां रक्ष। कथंभूतं माम्? संसारसिन्धोर्विधेर्भीतम्। पुनः कथंभूतम्? नितरामनन्यशरणम्। इतीति किम्? नानायोनिसहस्रसंभववशात् कति जनन्यो जाताः पितरोऽपि कियन्तो विख्याताः, अग्रे कति सेत्स्यन्ति एतेषां गणनैव नास्तीति। कथंभूतस्य विधेः? महत इत्यन्वयः। अर्थः स्पष्ट एव।।२५।।

पूर्णिमा—संसारसागर से मुक्ति के लिये भगवती त्रिपुरा की साधना की महत्ता को रेखांकित करने के बाद वे इस श्लोक में प्रार्थना करते हैं—हे दयानिधे मां! इस संसार-सागर के आवागमन के चक्कर में फंसकर विभिन्न योनियों में जन्म लेने के कारण मुझे यह भी याद नहीं है कि पिछले जन्मों में मेरे कितने पिता हुए और कितनी मातायें हुईं। मुझे यह भी पता नहीं है कि अगले जन्मों में मेरे कितने पिता होंगे और कितनी मातायें होंगी, लेकिन इतना निश्चित है कि मुझे लाखों बार जन्म लेकर मृत्यु का वरण करना होगा। इस तरह मुझे लाखों बार जन्म-मृत्यु का दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये हे मेरी माँ! जन्म-मृत्यु के इस दारुण दुःख से मेरी रक्षा करो।।२५।।

विमर्श—नानायोनिसहस्रम्—आर्ष मान्यता के अनुसार संसार में ८४ लाख योनियाँ हैं। यथा—सत्ताईस (२७) लाख वृक्ष-पर्वत आदि की स्थावर योनियाँ हैं। नौ (९) लाख जलचर (मछली-मेंढक) योनियाँ हैं। ग्यारह लाख (११) कर्म—सर्पयोनियाँ हैं। दस लाख पक्षी (काक-तोता-मैना) आदि योनियाँ हैं। तेईस (२३) लाख चतुष्पद और चार लाख द्विपद योनियाँ हैं।

देहक्षोभकरैर्व्रतैर्बहुविधैर्दानैश्च होमैर्जपैः
संतानैर्हयमेधमुख्यसुमुखैर्नानाविधैः कर्मभिः।
यत्संकल्पविकल्पभावमलिनं ख्यातं पदं तस्य ते
दूरादेव निवर्तते परतरं मातः पदं निर्मलम्।। २६।।

ननु संसारदुःखनिवारणार्थं नानाव्रतानि नानायागादिक्रियाः प्राक्तनाचार्यैः प्रोक्ताः कथं न क्रियन्ते। मदाराधनायामेव किमाधिक्यमिति देव्याक्षेपे मुनिराह— **देहक्षोभकरैरिति।**

हे मातः! तस्य यत्पदं ख्यातं तन्नानाविधैः कर्मभिः कृत्वा संकल्पविकल्पभावमलिनं भवति। ते पदं दूरादेव निवर्तते। कथंभूतं ते पदम्? परतरं निर्मलं चेत्यन्वयः। देहक्षोभकरैः शरीरशोषकैः। व्रतैरुपवासादिभिः। बहुविधैः नानाप्रकारैः। दानैस्तुलापुरुषादिभिः। जपैरन्यदेवताविषयैः। संतानैर्निरन्तरान्नसत्रादिभिः। हयमेधमुख्यसुमखैरश्वमेधमुख्यमहायज्ञैः। नानाविधैर्बहुप्रकारैः। कर्मभिः क्रियाभिः। यत्प्राप्यम्। संकल्पविकल्पभावमलिनं संकल्पः करोमि, विकल्पो न करोमि, अनयोर्भावः संशयस्तेन मलिनं सुखदुःखफलप्रदम्। ख्यातं प्रसिद्धम्। पदं स्थानम्। तस्य कर्तुः। ते परदेवतायाः। दूरादेव बहुव्यवधानेनापि न। निवर्तते परिवर्तते। परतरं परमोत्कृष्टम्। मातरम्ब। पदं स्थानम्। निर्मलं कलङ्करहितम्।।२६।।

पूर्णिमा—शास्त्र में बताये गये विभिन्न कर्मों और अनुष्ठानों से प्राप्त होने वाले फल की अपेक्षा भगवती के चरण-कमलों की सेवा के फल की श्रेष्ठता इस श्लोक में रेखांकित की गई है।

शरीर को कष्ट देने वाले अनेक प्रकार के व्रतों और अनुष्ठानों से, विभिन्न प्रकार के दानों से, अन्य देवताओं के मन्त्र-जप और होम से, अश्वमेध आदि यज्ञों से संकल्प-विकल्पयुक्त चित्त वाले मनुष्यों को जो मलिन और अस्थिर पद (फल) मिलता है, उसकी अपेक्षा तुम्हारे चरणकमलों की सेवा से प्राप्त होने वाला निष्कलंक पद कई गुना श्रेष्ठ है।।२६।।

पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैर्नानाविधैर्धातुभि-
र्बह्वर्थैः पदवाक्यमानजनकैरर्थाविनाभावितैः।
साभिप्रायवदर्थकर्मफलदैः ख्यातैरनन्तैरिदं
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके।। २७।।

अतः परं सकलमातृकाप्रपञ्चमूलभूतामकारहकाररूपां परां शक्तिं प्रस्तौति— **पञ्चाशन्निति।** हे मातृके! त्वं नानाविधैर्धातुभिर्विश्वं व्याप्य चिदात्मना अहमहमिति उज्जृम्भसे इत्यन्वयः। पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैर्निजदेहः पराशरीरं तस्माज्जातानि प्रसृतानि तेभ्यो भव उत्पत्तिर्येषां तैः। परारूपस्याक्षरमयत्वं सर्वत्रागमे प्रसिद्धम्। नानाविधैर्बहुप्रकारैः।

धातुभि: प्रसिद्धै:। बह्वर्थैर्नानार्थकै:। पदवाक्यमानजनकै:, पदं अक्षरसमुदाय:, मानानि छन्दांसि वाक्यसमुदायरूपाणि, वाक्यं पदसमुदाय:, एतेषां जनकै: कारणभूतै:। अर्थाविनाभावितै: अर्थं विना न भावितानि इति तै:। अर्थयुक्तैरित्यर्थ:। साभिप्रायवदर्थकर्मफलदैरभिप्रायेण कारणेन सह वर्तमाना येऽर्था घटपटादयस्तेषां कर्म कर्तव्यता तत्फलं निष्पत्तिस्तां ददति दर्शयन्ति तै:। ख्यातै: प्रसिद्धै:। अनन्तैरगणितै:। इदं विद्यमानम्। विश्वं त्रैलोक्यम्। व्याप्य परिपूर्य। चिदात्मना चैतन्यरूपेण। अहम् अहम् इति उज्जृम्भसे उद्घोषं कुरुषे। मातृके मूलभूते।।२७।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में वाङ्मयरूपिणी देवी की सर्वव्यापकता का निरूपण करते हुए उनकी स्तुति की गई है।

हे मातृके! आपके वर्णमय वपु के पचास (५०) अक्षरों से निर्मित अनेक धातुओं से व्युत्पन्न तथा वक्ता के अभिप्राय को व्यक्त करने वाले पदों, वाक्यों और छन्दों में निहित होकर आप यह घोषणा कर रही हैं कि इस विश्व में चैतन्य रूप से आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं।।२७।।

विमर्श—भगवती त्रिपुरा का शरीर वर्णमय है—'अकारादि-क्षकारान्ता मातृका पीठरूपिणी' (ज्ञानार्णव)। इन वर्णों से ही संसार की उत्पत्ति हुई है, जिसका संकेत अगले श्लोक में दिया गया है। अत: उन्हें मातृका कहा गया है। विभिन्न वर्णों के संयोग से विभिन्न अर्थों को व्यक्त करने वाले सुबन्त और तिङन्त पद बने। पदों से वाक्य और छन्द बनते हैं। पदों और छन्दों से समस्त वाङ्मय अर्थात् वेदों, पुराणों, उपनिषदों, शास्त्रों तथा समस्त ग्रन्थों की निष्पत्ति हुई। इस तरह वर्णरूपिणी त्रिपुरा जन-जन में व्याप्त है।

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोश इति ते संसारचक्रात्मकं
विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं सर्वत:।
एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं
मध्ये बैन्दवसिंहपीठललिते त्वं ब्रह्मविद्याशिवे।। २८ ।।

अत: परं सिद्धं श्रीचक्रं सदैवतं प्रस्तौति—**श्रीचक्रमिति**। हे शिवे! ते श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोश इति ख्यातम्। कथंभूतम्। संसारचक्रात्मकम्। पुन: कथंभूतम्। तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयम्। पुन: कथंभूतम्। सर्वत: श्रीसुन्दरीभिर्वृतम्।' कथंभूताभि: एतन्मन्त्रमयात्मिकाभि:। पुन: कीदृशम्। अरुणम्। मध्ये त्वं ब्रह्मविद्या। कथंभूते मध्ये। बैन्दवसिंहपीठललिते इत्यन्वय:। श्रीचक्रं महात्रिपुरसुन्दर्या: पूजाचक्रम्। श्रुतिमूलकोश: श्रुतीनां वेदानां मूलं प्रणव:। 'ओङ्कारप्रभवा वेदा:' इति वचनात्। तस्य कोशभूतं

श्रीचक्रगतमध्यत्रिकोणं तस्य कामकलाक्षरगतिबिन्दुत्रयमयत्वात्। बिन्दुत्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपत्वात्। 'ब्रह्मबिन्दुर्महेशानी वामा शक्तिरुदीरिता' इति ज्ञानार्णववचनात्। विश्वं वमतीति वामा, वामाशक्तेः शब्दार्थसृष्टिकारणत्वेन श्रीचक्रस्य श्रुतिमूलकोशत्व-मित्यादिः। इति कारणात्। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। संसारचक्रात्मकं संसारचक्रं कालचक्रं देशचक्रं च। श्रीचक्रस्य कालचक्रेण देशचक्रेण च साम्यं तन्त्रराजेऽष्टाविंशतितमे पटले श्रीशिवेन प्रतिपादितम्। मयाऽत्र ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते। यैरेव मूलविद्याक्षरैः श्रीचक्रं प्रसृतं तैरेवाक्षरैः संसारचक्रं प्रसृतमिति ज्ञानार्णवोक्तिः। यथा—

लकारात्पृथिवी जाता सशैलवनकानना।
पञ्चाशत्पीठसंपन्ना सर्वतीर्थमयी परा।।
सर्वगङ्गामयी सर्वक्षेत्रस्थानमयी शिवे।
सकाराच्चन्द्रतारादिग्रहराशिस्वरूपिणी ।।
हकाराच्छिवसंबन्धव्योममण्डलसंस्थिता ।
ईकाराद्विश्वकर्त्रीयं माया तुर्यात्मिका प्रिये।।
एकाराद्वैष्णवी शक्तिर्विश्वपालनतत्परा।
रकारात्तेजसा युक्ता परंज्योतिःस्वरूपिणी।।
ककारात्कामदा कामरूपिणी स्फुरदव्यया।
अर्धचन्द्रेण देवेशि विश्वयोनिरितीरिता।
बिन्दुना शिवरूपेण शून्यरूपेण साक्षिणी।। इति।

एवं संसारचक्रात्मकता मूलविद्यायास्तदात्मकता श्रीचक्रस्येति वा साम्यम्। विख्यातं प्रसिद्धम्। तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयम्। तदधिष्ठितानि श्रीचक्राधिष्ठितानि यान्यक्षराणि तान्येव बीजभूतास्तत्तदावरणदेवतादिभूतवर्णास्त एव शिवाः। अणिमासिद्ध्यादयः कामाकर्षिण्यादयः अनङ्गकुसुमादयः सर्वसंक्षोभिण्यादयः सर्वसिद्धिप्रदादयः सर्वज्ञादयो वशिन्यादयः कामेश्वर्यादय एव ज्योतींषि तन्मयं तत्प्रचुरं सर्वतः श्रीचक्रमभिव्याप्य एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिः एतद्विद्याक्षरप्रसृताभिः। लकाराच्चतुरस्रं सदैवतं प्रसृतम्, सकारात् षोडशदलं सदैवतम्, हकारादष्टदलं सदैवतम्, ईकाराच्चतुर्दशारं सदैवतम्, एकाराद्बहिर्दशारं सदैवतम्, रकारादन्तर्दशारं सदैवतम्, ककारादष्टकोणं सदैवतम्, अर्धेन्दोस्त्रिकोणं सदैवतम्, बिन्दोर्बैन्दवमिति मूलविद्यानवाक्षरैः सम्पूर्णं श्रीचक्रं सावरणं प्रसृतमिति मुनेरभिप्रायः। उक्तं च ज्ञानार्णवे—

लकारः पृथिवीबीजं तेन भूबिम्बमुच्यते।
सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशकात्मकः।।

तस्मात् षोडशपत्रं च हकारः शिव उच्यते।
अष्टमूर्तिः सदा भद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत्।।
ईकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परा तस्माच्छक्रकोणं भवेत्प्रिये।।
शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूते जगत्त्रयम्।
विष्णोर्योनिरिति ख्याता सा विष्णोर्दशरूपकम्।।
एकारात्परमेशानी चक्रं व्याप्य विजृम्भिता।
दशकोणकरं तस्माद्रकारो ज्योतिरव्ययः।
कलादशान्वितो वह्निर्दशकोणप्रवर्तकः।
ककारान्मदनो देवि शिवं चाष्टस्वरूपकम्।।
योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत्।
अर्धमात्रा गुणान् सूते नादरूपा यतस्ततः।।
त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना वैन्दवं भवेत्।
कामेश्वरस्वरूपं तद्विश्वाधारस्वरूपकम्।
श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यावीर्यसंभवम्।। इति।

अरुणं बालार्कप्रभम्। श्रीसुन्दरीभिर्वृतं श्रिया सौन्दर्येण सुन्दर्यः श्रीसुन्दरीप्रायाः। श्रीसुन्दर्याः पञ्चमहाशवसंनद्धसिंहासनं कामेश्वराङ्कोपवेशनमिति विशेषः। वृतं परिवेष्टितम्। मध्ये मध्यत्रिकोणमध्ये। बैन्दवसिंहपीठललिते बैन्दवं बिन्दुचक्रं तत्र सिंहासनं पूर्वोक्तरूपं तेन ललिते निरुपमशोभान्विते। त्वं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। ब्रह्मविद्या परब्रह्मात्मिका। शिवे कल्याणरूपे।।२८।।

पूर्णिमा—हे शिवे! हे कल्याणकारिणी माते! आपका पूजन यंत्र 'श्रीचक्र' पूर्णतः संसारचक्रात्मक है अर्थात् श्रीचक्र और संसारचक्र में पूर्णतः साम्यता है। आपका यह श्रीचक्र वेदों के मूल कारण 'ॐ'कार का कोशस्वरूप है। इस पर अंकित (अधिष्ठित) अक्षर शिवज्योतिर्मय हैं। पाँच महाप्रेतों पर स्थित आपके इस श्रीचक्र पर मूल मन्त्र के अक्षरों की विभूतिस्वरूपा अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी देवियों से चारो ओर से परिवृत्त मूल-त्रिकोण के मध्य में अत्यन्त सुन्दर बैन्दवपीठ पर महाकामेश्वर के अंक पर ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी आप प्रतिष्ठिता हैं।।२८।।

विमर्श—१. श्रीचक्र और संसार चक्र—श्रीज्ञानार्णव-तन्त्र में कहा गया है कि 'श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यार्णवसम्भवम्' (१०/४८) तथा 'श्रीचक्रमपि देवेशि! मेरुरूपं न संशयः' (१०/३९)। इसका अर्थ यह है कि भूमि ('ल'कार) चन्द्र

('स'कार) माया (ईकार) शक्ति ('ए'कार) कृष्णाध्व ('र'कार) मादन ('क'कार) अर्धचन्द्र (अनुस्वार) तथा बिन्दु (.) रूप जिस नवाक्षरी मन्त्र से भगवती त्रिपुरा के मन्त्रों की निष्पत्ति हुई है, उन्हीं नौ (९) अक्षरों से नौ (९) आवरण वाले श्रीचक्र की भी उत्पत्ति हुई है। यथा—'ल'कार (पृथ्वीबीज) से श्रीचक्र का भूपुर। 'स'कार (चन्द्रबीज) से षोडशदल चक्र। 'ह'कार (शिवबीज) से अष्टदल कमल चक्र। 'ई'कार (महामाया) से चतुर्दशार। 'ए'कार (शक्तिबीज) से बहिर्दशार। 'र'कार (अग्निबीज) से अन्तर्दशार। 'क'कार (मादन) से अष्टार (अष्टकोण)। अर्धचन्द्र से मूल-त्रिकोण और बिन्दु (.) से बिन्दुचक्र।

इन्हीं अक्षरों से संसार की भी उत्पत्ति हुई है। यथा—'ल'कार से वन-पर्वत-पीठ-तीर्थ तथा नदियों आदि के साथ पृथिवीमण्डल। 'स'कार से ग्रह-नक्षत्र-राशि-सहित समस्त चन्द्रमण्डल। 'ह'कार से आकाश अर्थात् व्योममण्डल (अंतरिक्ष)। इसी तरह मेरु-मन्त्र के अन्य घटक 'वर्ण' उन-उन दिव्य विभूतियों और शक्तियों के स्वरूप है, जिनसे इस सतत संसरणशील संसार को प्राणवत्ता-जीवन्तता-संरक्षण-सरसता आदि की प्राप्ति होती है। यथा—'ई'कार 'माया' है, मायास्वरूप है, जिससे स्थावर-जङ्गमरूप प्राणिजगत् उत्पन्न हुआ तथा संसार को प्राणवत्ता मिली। 'ए'कार वैष्णवी शक्ति है, जो संसार का पालन-पोषण करती है। 'र'कार अग्नि-बीज—उष्मा है—ऊर्जा है, जिससे संसार का समस्त क्रियाव्यापार चल रहा है। 'क'कार कामबीज है—कामनाओं का उत्स है, जिससे संसार में सरसता है, जिससे प्राणिजगत् स्पन्दित है। अर्धचन्द्र विश्वयोनि है तो बिन्दु वह महाशून्य है, जिसमें संसार को विश्रान्ति मिलती है और पुनर्जीवन प्राप्त होता है। इस तरह संसारचक्र और श्रीचक्र की समानता स्पष्ट है। तन्त्रराजतन्त्र (२८वाँ पटल) में संसार-चक्र और काल-चक्र की समरूपता का अत्यन्त विशद वर्णन किया गया है।

२. तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयम्—'तद्' अर्थात् श्रीचक्र पर अधिष्ठित (अंकित) अक्षर। श्रीज्ञानार्णव-तन्त्र में ही आगे (१०/९२-९४) बताया गया है कि श्रीचक्र के प्रत्येक चक्र में तथा प्रत्येक चक्र के प्रत्येक कमलदल अथवा प्रत्येक कोण में वर्णमाला के समस्त वर्ण अद्भुत क्रम से विन्यस्त हैं। यथा—षोडशदल कमल में एक-एक कर 'अ'कारादि सोलह स्वर। अष्टदल कमल में एक-एक कर आठ वर्ग। चतुर्दशार में 'क'कार से 'ढ'कार-पर्यन्त १४ वर्ण, प्रथम दशार में 'ण'कार से 'भ'कारं-पर्यन्त दस (१०) वर्ण, द्वितीय दशार में 'म'कार से 'क्ष'कार तक के दस वर्ण। त्रिकोण के तीन कोणों में क्रमशः 'अ'-'क' और 'थ'। बैन्दव चक्र में 'ह'कार और 'क्ष'कार। 'ज्ञानार्णव' के ही प्रथम पटल में बताया गया है कि स्वरवर्ण

शक्तिस्वरूप और व्यञ्जन वर्ण 'शिव'स्वरूप हैं। इस तरह श्रीचक्र पर अधिष्ठित वर्ण शिवशक्तिमय हैं और इसी कारण से श्रीचक्र को 'शिवयोः' अर्थात् 'शिव' और 'शिवा' का (युगपत्) वपु कहा गया है।

३. एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिः—श्रीचक्र में भूपुर से बिन्दु-पर्यन्त ९८ शक्तियों और ९ चक्रेश्वरियों तथा पञ्च-पञ्चिका वर्ग की २५ महादेवियों सहित १२३ देवियों की पूजा होती है। यथा—भूपुर में अणिमा आदि २८ देवियों और चक्रेश्वरी त्रिपुरा की पूजा होती है। षोडशदल चक्र में चक्रेश्वरी त्रिपुरेशी तथा कामाकर्षिणी आदि १६ देवियों की, अष्टदल में चक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी तथा अनङ्गकुसमादि ८ देवियों की, चतुर्दशार में चक्रेश्वरी त्रिपुरवासिनी और सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ देवियों की, बहिर्दशार में चक्रेश्वरी त्रिपुराश्री और सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस देवियों की, अन्तर्दशार में त्रिपुरमालिनी तथा सर्वज्ञप्रदा आदि दस देवियों की, अष्टार में चक्रेश्वरी त्रिपुरासिद्धा एवं वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं की, त्रिकोण में त्रिपुरा अम्बा सहित महाकामेश्वरी आदि तीन महादेवियों की पूजा की जाती है। बैन्दव चक्र पर ही पञ्चपञ्चिका वर्ग की २५ महादेवियों की अर्चना की जाती है। ये सभी देवियाँ भगवती श्रीविद्या (महात्रिपुर-सुन्दरी) की रूपाभिव्यक्तियाँ हैं और इनकी संस्थिति से यह श्रीचक्र ज्योतिर्मय बना हुआ है। ये देवियाँ मूल त्रिकोण के मूल बिन्दु पर विराजिता भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी को चारो ओर से परिवेष्टित करके श्रीचक्र में प्रतिष्ठिता हैं।

४. श्रुतिमूलकोश—श्रीचक्र के मध्य में जो अधोमुख त्रिकोण है, वह कामकलाक्षर के ब्रह्मा-विष्णु और रुद्ररूप रक्त-शुक्ल और मिश्र-संज्ञक तीन बिन्दुओं से युक्त है। इनमें से ब्रह्मा बिन्दु एवं वामा शक्तिस्वरूप है; जैसा कि 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है—'ब्रह्मा बिन्दुर्महेशानि! वामा शक्तिर्निगद्यते' (१/१४)। यह वामा शक्ति ही शब्दसृष्टि और अर्थ-सृष्टि का वमन करती है अर्थात् प्रकट करती है।

प्रणव है—'ॐ'कार। यह 'ॐ'कार सृष्टि-उन्मुख शब्दब्रह्म का महाशून्यावस्था में प्रथम निनाद है और इस निनाद को वामा शक्ति अभिव्यक्त करती है। अतः वामा-शक्ति का अधिष्ठान होने के कारण श्रीचक्र (चक्र का मूल त्रिकोण) श्रुतिमूल अर्थात् प्रणव (ॐकार) का कोश है। इस मूल-त्रिकोण के मध्यवर्ती ललित वैन्दव पीठ पर ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी आप प्रतिष्ठिता हैं।

बिन्दुप्राणविसर्गजीवसहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं
षट्कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालावलैः।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विहरेत् प्रासादमन्त्रं परं
गुह्याद् गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोगमोक्षप्रदम्।। २९।।

अत: परं पूर्णाभिषेकसिद्धेन साधकेन श्रीचक्रावरणपूजानन्तरं परापूजाया अवश्यकर्तव्यत्वाद्विद्योद्धारं करोति— **बिन्दुप्राणेति।**

बिन्दु: पञ्चदशस्वर:, प्राण: हकारादि:, विसर्ग: किमन्त्यस्वर:, जीव: सकार:, सहितमेभिर्मिलितं हंस इति पदं बिन्द्वात्मकं हंस इति त्रिबिन्द्वात्मकम्। बिन्द्वादिकं विसर्गादिकं बिन्दुर्विसर्गादिकं चेति। त्रीणि कूटान्यनुक्रमेण व्युत्क्रमेणाथैतान्येव त्रीणीति एवं षट् कूटानि। यथा—आदौ पञ्चदशस्वर: हंस:१, षोडशस्वर: सोऽहम् २, अं हंस:, अ: सोऽहम् इति षड्भिरक्षरै: ३, विपर्ययेण विलोमेन तृतीयं द्वितीयं प्रथमं चेति कूटानि निगदेत् उच्चरेत्। तारत्रिबालावलै: तारत्रयं प्रणवमायाश्रीबीजानि बाला वाग्भवकामराजशक्तिबीजानि बलबीजं खप्रेमात्मकम्। एभि: सप्तबीजै:। संपुटितमनुलोमविलोमेन गर्भीकृतम्। प्रजप्य यथेष्टसंख्यां समाप्य। विहरेत् सुखमनुभवेत्। प्रासादमन्त्रं हौमिति बीजं पराप्रासादपराख्यम्। परं पराबीजं हकारं संयोजितमिति ज्ञेयम्। उत्कृष्टं गुह्याद् गुह्यतमम्। गोप्याद् गोप्यतरम्। सयोगजनितं सकारसंयोजितम्। सद्भोगमोक्षप्रदं समीचीना भोगा: स्रक्चन्दनवनितागजतुरगारोहराजमान्यतादिका: मोक्षं च प्रयच्छतीति। एतदुक्तं भवति—क्रमेण पूर्वोक्तानि सप्त बीजानि, तत: क्रमेणैवोक्तानि त्रीणि कूटानि, तत: ह्सौं स्हौं: पुनर्व्युत्क्रमेण त्रीणि कूटानि, ततो व्युत्क्रमेणैवोक्तसप्तबीजानि इति महापराप्रासादविद्या। अयं श्लोक: क्षेपक इति भासते। मुनिनातिगोप्यत्वाद्विद्याक्षराणां प्रभाव एव वर्णित:। स्फुटतयोद्धारो न कृत:। मया संप्रदायशुद्धत्वादत्र व्याख्यात:।।२९।।

पूर्णिमा—विन्दु अर्थात् अनुस्वार। प्राण अर्थात् 'ह'कार। विसर्ग (:)। जीव अर्थात् 'स'कार। इन सभी के संयोग से बना—'हंस:'। इसका त्रिबिन्द्वात्मक रूप हुआ—अं हं स:। 'हंस' का व्युत्क्रम रूप—'सोऽहम्', इसका विसर्गादिक त्रिबिन्दु आत्मक स्वरूप है—'अ:' सोऽहम्। इस तरह छ: कूट बने—'अं हं स: अ: सोऽहम्'। त्रितार अर्थात् 'ॐ ह्रीं श्रीं'। बाला मन्त्र—'ऐं क्लीं सौ:'। बलबीज—'ख्फ्रें'। इस तरह सात बीज प्राप्त हुए—'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौ: ख्फ्रें'। पराबीज 'ह'कार और 'स'कार के युग्मन से व्युत्पन्न पराप्रासाद मन्त्र—'ह्सौं स्हौं'। यह पराप्रासाद मन्त्र सर्वाधिक गुह्य तथा भोग एवं मोक्षप्रद है। इस पराप्रासाद मन्त्र को उपर्युक्त षट् कूटों और सप्त बीजों से सम्पुटित करके यथेष्ट संख्या में जप करने वाला साधक सदा सुखी रहता है।।२९।।

विमर्श—त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र के संस्कृत-टीकाकार श्री नित्यानन्द-नाथ ने इस श्लोक को क्षेपक माना है तथापि मन्त्र की गोपनीयता की रक्षा के लिये स्पष्ट मन्त्रस्वरूप नहीं बताया है। इस स्तोत्र के प्रथम हिन्दी टीकाकार गुरुकल्प योगीन्द्रकृष्ण

दौर्गादत्ति शास्त्री ने मन्त्र की गोपनीयता की रक्षा के लिये इस श्लोक की हिन्दी टीका ही नहीं की है। यह महापराप्रासाद मन्त्र गुरुमुख से ही प्राप्त किया जाना चाहिए।

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारिसुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।। ३० ।।

अतः परं श्रीत्रिपुरसुन्दरीं सर्वाभरणभूषितां बिन्दुचक्रसिंहासनोपविष्टां महाराजोपचारैराराधितां मुनिः प्रार्थयति— **आताम्रार्केति।**

हे श्रीमातः! हे त्रिपुरारिसुन्दरि! त्वं मम स्वान्ते निवासं कुरु। कथंभूता त्वम्। अगणितैर्नानानर्घ्यविभूषणैरलं यथा स्यात्तथा उपयुक्ता सती अभितो जाज्वल्यमाना। पुनः कथंभूता। आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा। कथंभूतैर्विभूषणैः। सौन्दर्यसारैः। पुनः कथंभूतैः। लोकातीतमहोदयैः। पुनः कीदृशैः। सर्वोपमागोचरैरित्यन्वयः। आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा आताम्रार्का बालार्कास्तेषां सहस्रं यस्य दीप्तिः कान्तिस्तया परमा सर्वोत्कृष्टा। सौन्दर्यसारैः सौन्दर्यमन्थनोद्भवैः। अलं पूर्णम्। लोकातीतमहोदयैर्लोकातीतो लोकोत्तरो महोदय उत्कर्षो येषाम्। मातर्जननि। त्रिपुरारिसुन्दरि त्रिपुरारिः शिवस्तस्य सुन्दरी मनोहरा। कुरु विधेहि। स्वान्ते हृदये। निवासं विश्राममम्। मम त्वदाराधकस्य।।३०।।

पूर्णिमा—इस श्लोक से प्रारम्भ कर ४०वें श्लोक तक ११ श्लोकों में देशिकेन्द्र दुर्वासा ने महाराज-उपचारों से सम्यक् रूप से आराधिता एवं सर्वाभरणभूषिता बिन्दु-चक्र के सिंहासन पर विराजिता भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के लोकोत्तर सौन्दर्य की वन्दना करते हुए उनसे अपने इस अपूर्व सौन्दर्य के साथ साधक के हृदय में निवास करने की प्रार्थना की है।

अगणित दिव्य अलंकारों के कारण चतुर्दिक् आभामयी तथा सद्यः उदित सहस्रशः सूर्यों की सम्मिलित रक्त प्रभा से भी अधिक अरुणवर्णी एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त सौन्दर्यसागर के मन्थन से उद्भूत सुषुमामयी हे माते त्रिपुरारि-सुन्दरी! आप अपने इस लोकोत्तर एवं अनुपमेय सौन्दर्य के साथ सदा मेरे हृदय में निवास करें।।३०।।

विमर्श—जो इस लोक का हो, वह लौकिक है। कोई भी लौकिक वस्तु या सत्ता, वह चाहे जितनी ही श्रेष्ठ और वरीय हो, उसमें कुछ न कुछ न्यूनता रहती ही है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का सौन्दर्य किसी भी प्रकार की न्यूनता से मुक्त पूर्ण सौन्दर्य है। वह चिर-सनातन, चिर नवीन और शाश्वत है; अतएव वह लोकोत्तर है।

फिर जो सौन्दर्य लोकोत्तर है, उसकी लौकिक उपमानों से उपमा नहीं दी जा सकती; अतः वह अनुपमेय है। लोकोत्तर और अनुपमेय सौन्दर्यशालिनी भगवती के अलंकरण भी लोकोत्तर हैं। लोकोत्तर अलंकरणों से दीपित भगवती की लोकोत्तर सौन्दर्यकान्ति से ही साधक के हृदय में जन्म-जन्मान्तर के संस्कारवश घनीभूत अज्ञान तमिस्रा का निराकरण हो सकता है। इसीलिये देशिकेन्द्र दुर्वासा ने भगवती त्रिपुरा से अपने लोकोत्तर एवं अनुपमेय सौन्दर्य-कान्ति के साथ अपने हृदय में निवास करने की प्रार्थना की है।

इस श्लोक में भगवती के समग्र सौन्दर्य की वन्दना करने के बाद अगले श्लोक में उनके चरण-कमलों के सौन्दर्य का निरूपण करते हुए उनकी अभ्यर्थना की गई है।

शिञ्जन्नूपुरपादकङ्कणमहामुद्रासुलाक्षारसा-
लङ्काराङ्कितमङ्घ्रिपङ्कजयुगं श्रीपादुकालङ्कृतम्।
उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्डरुचिरं राजज्जपासन्निभं
ब्रह्मादित्रिदशासुरार्चितमहं मूर्ध्नि स्मराम्यम्बिके।। ३१ ।।

पूर्वश्लोकेन श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः समुदायरूपेण भूषणान्यभिष्टूयेदानीं नानापुष्पालङ्कारवसनाभूषितायाः परमसौभाग्यशालिन्या दृष्टिगोचराङ्गभूषणानि महायोगीश्वरश्चरणमारभ्य मुकुटान्तानि प्रस्तौति—शिञ्जन्निति।

हे अम्बिके! तेऽङ्घ्रियुगमहं मूर्ध्नि स्मरामि। कथंभूतम्। शिञ्जन्नूपुरपादकङ्कणमहा-मुद्रासुलाक्षारसालङ्काराङ्कितम्। पुनः कथंभूतम्। श्रीपादुकालङ्कृतम्। पुनः कीदृशम्। उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्डरुचिरम्। पुनः कीदृशम्। राजज्जपासन्निभम्। पुनः कीदृशम्। ब्रह्मादित्रिदशासुरार्चितमित्यन्वयः। शिञ्जन्निति शिञ्जन्नूपुरे पादकङ्कणे च महामुद्राश्च सुलाक्षारसश्च तैरलङ्कारितम् अङ्कितं च। अङ्घ्रिपङ्कजयुगं चरणकमलद्वन्द्वम्। श्रीपादुकालङ्कृतं श्रीपादुके चिन्तामणिरचिते ताभ्यामलङ्कृतं भूषितम्। उद्भास्वन्निति उदूर्ध्वं भास्वन्ति प्रकाशमानानि नखान्येव चन्द्रखण्डानि तै रुचिरं सुन्दरम्। राजज्जपासन्निभं राजज्जपा नूतनजपापुष्पाणि तैः सदृशी निभा यस्य। ब्रह्मादीति ब्रह्मादयो ब्रह्मविष्णुरुद्रास्त्रिदशा इन्द्रादयः, असुरा दैत्याः, तैरर्चितं समाराधितम्। अहं तवाराधकः। मूर्ध्नि मस्तके। स्मरामि भावयामि। अम्बिके जननि।।३१।।

पूर्णिमा—हे अम्बिके! मैं अपनी मूर्धा में सदैव आपके उन चरणकमलों का ध्यान (स्मरण) करता हूँ, जो रुन-झुन की मधुर ध्वनि करने वाले पाजेबों (पाद-कंकण) से अलंकृत तथा लाक्षारस (महावर) के द्वारा बनायी गई पद्म, शंख, चक्र

आदि महामुद्राओं की पत्रावलियों से लसित एवं ऊपर की ओर प्रकाशकिरणों को प्रसारित करने वाले जपाकुसुमों के समान अरुणाभ अर्धचन्द्राकार नखों से राजित हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्र आदि सहित सभी सुरों और साथ ही असुरों द्वारा अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिये नित्यप्रति जिनकी वन्दना की जाती है।।३१।।

विमर्श—काव्यशास्त्र में लोकोत्तर देवियों और मानवी नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन की पृथक्-पृथक् रीति और मर्यादा है, जिसका निरूपण आचार्य केशवदास ने 'कविप्रिया' में इस प्रकार किया है—

नख ते सिख लौं बरनिये, देवी दीपति देखि।
सिख ते नख लौं मानुषी, केसवदास विसेखि।।

काव्यशास्त्र की इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए देशिकेन्द्र दुर्वासा ने इन १० (दस) श्लोकों में भगवती के चरणकमलों के नख से प्रारम्भ कर मुख-पर्यन्त नख-शिखसौन्दर्य का वर्णन किया है। इस काव्यशास्त्रीय मर्यादा की पृष्ठभूमि यह है कि सहृदय भक्त की दृष्टि सर्वप्रथम अपने आराध्या देवी के चरणकमलों पर पड़ती है और वह धीरे-धीरे दृष्टि उठाकर इष्टदेवता के मुखमण्डल का दर्शन करता है, जबकि मानवी नायक मानवी नायिका की मुखछवि से आकृष्ट होकर उसके सर्वाङ्ग सौन्दर्य से अभिभूत होता है।

आरक्तच्छविनातिमार्दवयुजा निश्वासहार्येण स-
त्कौशेयेन विचित्ररत्नखचितैर्मुक्ताफलैरुज्ज्वलैः।
कूजत्काञ्चनकिङ्किणीभिरभितः संनद्धकाञ्चीगुणै-
रादीप्तं सुनितम्बबिम्बमरुणं ते पूजयाम्यम्बिके।। ३२।।

इदानीं परदेवतायाः सुभूषितं सुपूजितं नितम्बबिम्बमभिष्टौति—**आरक्तेति**। हे अम्बिके! ते सुनितम्बबिम्बमहं पूजयामि। कथंभूतम् अरुणम्। पुनः कथंभूतम्। सत्कौशेयेन मुक्ताफलैः काञ्चीगुणैश्च आदीप्तमित्यन्वयः। आरक्तच्छविना आरक्ता छविः कान्तिर्यस्य तेन। अतिमार्दवयुजा अतिकोमलेन। निश्वासहार्येण निश्वासवायुना कम्पनयोग्येन। सत्कौशेयेन समीचीनपट्टवस्त्रेण। विचित्ररत्नखचितैर्विचित्राणि नानाविधानि रत्नानि तैः खचितैर्गुम्फितैः। मुक्ताफलैर्महाकरिकुम्भोद्भवैः। उज्ज्वलैर्दीप्तिमद्भिः। कूजत्काञ्चनकिङ्किणीभिः कूजन्त्यः काञ्चनकिङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकाः। अभितः समन्तात्। सन्नद्धकाञ्चीगुणैः संनद्धा संघटिता काञ्ची कटिमेखला तस्या गुणैः सूत्रैः। आदीप्तं अतिशयेन प्रकाशमानम्। सुनितम्बबिम्बं सुष्ठु मनोहरं नितम्बबिम्बं श्रोणिमण्डलम्। अरुणमारक्तम्। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। पूजयामि भावयामि। अम्बिके प्राग्वत्।।३२।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में इष्ट-देवता के नितम्ब मण्डल के सौन्दर्य की वन्दना की गई है। अपनी मसृणता के कारण निःश्वासमात्र से हिल जाने वाली लाल रंग की रेशमी साड़ी से आवृत्त होने के कारण अरुणाभ प्रतीत होने वाले और छोटे-छोटे घुंघरुओं एवं शुभ्र धवल गजमुक्ताओं से खचित मेखला से लसित आपके नितम्ब-मण्डल की मैं पूजा (वन्दना) करता हूँ।।३२।।

विमर्श—१. 'अमरकोश' के अनुसार स्त्रियों के कटिप्रदेश का पिछला भाग 'नितम्ब' कहा जाता है—पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः।

२. 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' के आद्य हिन्दी टीकाकार राजगुरु कुलमार्तण्ड पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री ने इस श्लोक की पादटिप्पणी में लिखा है—'जगन्माता भारती (सरस्वती) पृथ्वी और रुद्राणी-स्वरूपा इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्ति की समष्टिरूपा अम्बिका भगवती महात्रिपुरसुन्दरी मानी गई हैं। 'अमरकोश' के अनुसार भगवती पार्वती का भी एक नाम 'अम्बिका' है—'अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका।'

कस्तूरीघनसारकुङ्कुमरजोगन्धोत्कटैश्चन्दनै-
रालिप्तं मणिमालयाऽतिरुचिरं ग्रैवेयहारादिभिः।
दीप्तं दिव्यविभूषणैरगणितैर्ज्योतिर्विभास्वत्कुच-
व्याजस्वर्णघटद्वयं हरिहरब्रह्मादिपीतं भजे।। ३३ ।।

अतः परं चन्दनालिप्तं मणिमालाहारभूषितं ब्रह्मादिकानां स्तन(न्य)पानयोग्यं परदेवताकुचकुम्भद्वयं प्रस्तौति— **कस्तूरीति।**

हे जननि! ते कुचव्याजस्वर्णघटद्वयमहं भजे इत्यन्वयः। कस्तूरी मृगमदः, घनसारः अगरुसत्त्वं कर्पूरो वा, कुङ्कुमं काश्मीरप्रभवम् एतेषां रजोगन्धैरुत्कटानि तैः। चन्दनैर्मलयजैः। आलिप्तं आसमन्तात् प्रलेपितम्, मणिमालया वज्रवैदूर्यादिनिर्मितया। अतिरुचिरमत्यन्त-भास्वरम् ग्रैवेयहारादिभिः ग्रैवेयं कण्ठभूषणं हारो गजमौक्तिकनिर्मितः तदादिभिः। दीप्तं प्रकाशमानम्। दिव्यभूषणैर्विश्वकर्मणा रचितैः। अगणितैरपरिमितैः ज्योतिर्विभास्वत् ज्योतिरिव प्रकाशमानम्। कुचव्याजस्वर्णघटद्वयं कुचव्याजेन स्तनमिषेण स्वर्णघटद्वयम्। हरिहरब्रह्मादिपीतं तेषामेव तत्पानाधिकारत्वात्। भजे भावयामि।।३३।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के स्तनद्वय की वन्दना करते हुए देशिकेन्द्र दुर्वासा कहते हैं—हे जननि! कस्तूरी, घनसार कपूर, कुंकुम और उत्तम गन्ध वाले चन्दन आदि द्रव्यों के मिश्रित प्रलेप से चर्चित तथा चमकदार दिव्य मणियों से निर्मित हार, ग्रैवेय तथा मणिमाला आदि विभूषणों से विभूषित आपके स्तनद्वय को

मैं उन स्वर्ण-कलसों के ब्याज (बहाने) से स्मरण करता हूँ, जिनके दुग्धामृत का पान ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र आदि देवताओं ने किया है।।३३।।

विमर्श—जगजननी के स्तनमण्डल में अमृतपूर्ण स्वर्णकलसों की भावना करने की काव्यशास्त्रीय परिपाटी रही है। ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा जगजननी के स्तनपान का उल्लेख करके देशिकेन्द्र दुर्वासा ने अपने मन में छिपी हुई इस अभिलाषा को संकेतों से व्यक्त किया है कि वे भी जगजननी त्रिपुरा का स्तनपान करने के लिये लालायित हैं।

सृष्टि के नियामक ब्रह्मा आदि देवता जगजननी के पुत्र हैं—सन्तान हैं, इसके बहुतेरे प्रमाण पुराणों में मिलते हैं।

मुक्तारत्नविचित्रकान्तिललितैस्ते बाहुवल्लीरहं
केयूराङ्गदबाहुदण्डवलयैर्हस्ताङ्गुलीभूषणैः ।
संपृक्ताः कलयामि हीरमणिमन्मुक्तावलीकीलित-
ग्रीवापट्टविभूषणेन सुभगं कण्ठं च कम्बुश्रियम्।। ३४।।

अतः परं परदेवताया बाहुचतुष्टयं सुभूषितं कण्ठदेशं च प्रस्तौति—**मुक्तारत्नेति**। हे देवि ! ते बाहुवल्लीः कण्ठं च अहं कलयामि। कथंभूता बाहुवल्लीः। केयूराङ्गदबाहुदण्ड-वलयैर्हस्ताङ्गुलीभूषणैश्च संपृक्ताः। कथंभूतैर्बाहुदण्डवलयैः। मुक्तारत्नविचित्रकान्ति-ललितैः। कथंभूतं कण्ठम्। हीरमणिमन्मुक्तावलीकीलितग्रीवापट्टविभूषणेन सुभगम्। पुनः कथंभूतं कण्ठम्। कम्बुश्रियमित्यन्वयः। मुक्ता प्राग्वत्। रत्नानि हीरकादीनि तेषां विचित्रा नानावर्णा कान्तिश्छविस्तया ललितैर्मनोहरैः। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। बाहुवल्लीश्चतु-र्हस्तलताः। अहं त्वदाराधकः। केयूराङ्गदबाहुदण्डवलयैः केयूरा मणिबन्धनधारणयोग्याः, अङ्गदा कूर्परोपरितनभागधारणयोग्याः। बाहुदण्डवलयानि हस्तकटकानि कङ्कणानि च तैः। हस्ताङ्गुलीनां भूषणानि मुद्रिकादीनि तैः। सम्पृक्ताः संयुक्ताः। कलयामि प्राग्वत्। हीरमणिन्मुक्तावली वज्रगुलिकायुक्ता मुक्तावली तया कीलितं जडीकृतं ग्रीवापट्टविभूषणं तेन सुभगं कण्ठो गलदेशः। च समुच्चये। कम्बुश्रियं कम्बुः शङ्खः तद्वच्छ्रीः शोभा यस्य।।३४।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में पर-देवता की चारों भुजाओं और कण्ठदेश की वन्दना की गई है। हे देवि! विविध प्रकार के मोतियों और रत्नों से निर्मित केयूर-अंगद-अंगूठी आदि अलंकरणों से लसित आपके बाहुदण्डों तथा मोतियों की माला एवं हीरक-जटित ग्रैवेय से सुशोभित आपके शंखाकार कण्ठ (गला) का मैं ध्यान करता हूँ।।३४।।

उद्यत्पूर्णकलानिधिश्रिवदनं भक्तप्रसन्नं सदा
सम्फुल्लाम्बुजपत्रकान्तिसुषमाधिक्कारदक्षेक्षणम्।
सानन्दं कृतमन्दहासमसकृत्प्रादुर्भवत्कौतुकं
कुन्दाकारसुदन्तपङ्क्तिशशिभापूर्णस्मराम्यम्बिके।। ३५ ।।

अत: परं देवताया: सुप्रसन्नाया: श्रीवदनं प्रस्तौति—उद्यदिति। हे अम्बिके! ते वदनम् अहं स्मरामि। कथम्भूतम्। सदा भक्तप्रसन्नम्। पुन: कथंभूतम्। संफुल्लाम्बुज-पत्रकान्तिसुषमाधिक्कारदक्षेक्षणम्। पुन: कथंभूतम्। असकृत्सानन्दं यथा स्यात्तथा कृतमन्दहासम्। पुन: कीदृशम्। प्रादुर्भवत्कौतुकम्। पुन: कीदृशम्। कुन्दाकारसुदन्त-पङ्क्तिशशिभापूर्णमित्यन्वय:। उद्यन्नुदयं प्राप्त: पूर्णकलानिधि: परिपूर्णपूर्णिमाचन्द्रस्तस्य श्री: शोभा यस्य। भक्तप्रसन्नं भक्तानामुपासकानां प्रसन्नं वाञ्छितार्थसूचकम्। सदा निरन्तरम्। संफुल्लं विकसितमम्बुजं कमलं तस्य पत्राणां कान्ति: सुषमा परमा शोभा तस्या धिक्कारे दक्षं समर्थमीक्षणं यस्य। सानन्दं यथा स्यात्तथा कृतमन्दहासं कृत: प्रकटितो मन्द ईषत् हासो येन। असकृद्वारं वारम्। प्रादुर्भवत्कौतुकं प्रद्योतितकुतूहलम्। कुन्दाकारा कुन्दकलिकाश्रेणि–समाना। सुदन्तपङ्क्ति: सुषमा शोभना दन्तानां पङ्क्ति: रदावलिर्यस्या:। शशिन इव भा प्रभा तया पूर्णं व्याप्तम्। स्मरामि प्राग्वत्।।३५।।

पूर्णिमा—हे अम्बिके! कुन्दकली के समान धवल और चन्द्रकिरणों के समान उज्ज्वल दन्तपंक्ति से शोभित आपके मुखारविन्द का मैं सदैव अपने हृदय-कमल में ध्यान करता हूँ, जिसकी शोभा अपनी सम्पूर्ण सोलह कलाओं के साथ सद्य: उदित चन्द्रमा के समान है तथा जिसकी सौन्दर्य-छटा के सामने पूर्णत: विकसित कमलदलों की छटा भी फीकी पड़ जाती है तथा जिसके अधरमण्डल पर आपके हार्दिक आनन्द को व्यक्त करने वाली स्मित रेखा आपके भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करती है।।३५।।

तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगं माणिक्यमुक्तोल्लस-
द्धीराबद्धमनन्यतुल्यमपरं हैमं च चक्रद्वयम्।
शुक्राकारनिकारदक्षममलं मुक्ताफलं सुन्दरं
बिभ्रत्कर्णयुगं भजामि ललितं नासाग्रभागं शिवे।। ३६ ।।

अत: परं परदेवताया: सुभूषितं कर्णयुगं नासाग्रभागं च प्रस्तौति—**तप्तस्वर्णकृतेति।** हे शिवे! तव नासाग्रभागं कर्णयुगं च अहं भजे। कथंभूतं नासाग्रभागम्। अमलं सुन्दरं ललितं मुक्ताफलं बिभ्रत्। कथम्भूतं मुक्ताफलम्। शुक्राकारनिकारदक्षम्। कथंभूतं कर्णयुगम्। तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगम्। अनन्यतुल्यां हैमं चक्रद्वयं च दधत्। कथंभूतम्।

माणिक्यमुक्तोल्लसद्धीराबद्धपरमित्यन्वय:। तप्तमनलाहतं स्वर्णं जाम्बूनदं तेन कृतं निर्मितं उरु विस्तीर्णं कुण्डलयुगं ताटङ्कयुगलम्। माणिक्यानि मुक्ताश्च तैरुल्लसद्धीराबद्धम्। अनन्यतुल्यमन्येन ताटङ्कयुगेन न तुल्यं तस्माद्विलक्षणम्। अपरं द्वितीयम्। हैमं प्राग्वत्। च: समुच्चये। चक्रद्वयं वर्तुलाकारं कर्णोर्ध्वभूषणम्। शुक्राकारस्य निकारे धिक्कारे दक्षं समर्थम्। अमलं निर्मलम्। मुक्ताफलं राजकुम्भोद्भवम्। सुन्दरम्। बिभ्रद् दधत्। कर्णयुगम्। भजामि प्राग्वत्। ललितं मनोहरम्। नासाग्रभागम्। शिवे।।३६।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के कर्णयुगलों और नासाग्र की शोभा का वर्णन किया गया है। हे शिवे! अपनी चमक से शुक्र ग्रह की कान्ति को भी धूमिल कर देने वाले गजमुक्ता से निर्मित नासाग्रभूषण (बुलाक) से सुशोभित आपकी नासिका तथा अग्नितप्त जाम्बूनद स्वर्ण-निर्मित एवं माणिक-मोती-हीरा तथा अन्य रत्नजडित कुण्डलों तथा स्वर्ण-निर्मित द्विवलयों (बाली) से शोभित आपके कर्णयुगलों का मैं सदैव ही अपने हृदय में स्मरण करता हूँ।।३६।।

जातीचम्पककुन्दकेसररजोगन्धोत्किरत्केतकी-
नीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमै: प्रोत्तंसिता धूपिता।
आनीलाञ्जनतुल्यमत्तमधुपश्रेणीव वेणी तव
श्रीमात: श्रयतां मदीयहृयाम्भोजं सरोजालये।। ३७।।

अत: परं परदेवताया वेणिकां प्रस्तौति—**जातीचम्पकेति।**

हे सरोजालये! हे श्रीमात:! तव वेणी मदीयं हृदयाम्भोजं श्रयताम्। कथंभूता वेणी। जातीचम्पककुन्दकेसररजोगन्धोत्किरत्केतकीनीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमै: प्रोत्तंसिता धूपिता च। आनीलाञ्जनतुल्यमत्तमधुपश्रेणीवेत्यन्वय:। श्लोकार्थ: स्पष्ट एव।।३७।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में पर-देवता की वेणी का स्तवन किया गया है। कमलवन में निवास करने वाली हे माते त्रिपुरे! आपकी वह वेणी सदा मेरे हृदयकमल पर मंडराती रहे, जिसका वर्ण विभिन्न प्रकार के पुष्पों का रस पीकर मंडराते हुए अञ्जन (काजल)-वर्णी भौंरों के समान श्यामल है और जो जाती (मालती), चम्पक (चम्पा), कुन्द, बकुल (मौलसिरी) के पराग में महकाये गये केतकी, केवडा, नीप, अशोक, शिरीष आदि पुष्पों (की माला) से गुथी हुई है तथा जिसे कालागरु की धूप से धूपित किया गया है।।३७।।

विमर्श—१. सरोजालये—'लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमला श्री हरिप्रिया' इस कोश-वाक्य के अनुसार 'सरोजालया' भगवती महालक्ष्मी की संज्ञा है तथा 'या लक्ष्मी पद्मसंस्था' से 'पद्महस्ता' भगवती विष्णुप्रिया का बोध होता है; मगर यहाँ

'सरोजालया' श्रीविद्या देवी महात्रिपुरसुन्दरी का ज्ञापक और सूचक है, क्योंकि भगवती ललिता 'महापद्मवन'-निवासिनी हैं; इसीलिये उनका आवाहन 'महापद्माटवी' में किया जाता है—

महापद्मवनान्तस्थे! कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मात: एह्येहि परमेश्वरि।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के महापद्मभवन या महापद्माटवी का विशद् निरूपण पद्धति ग्रन्थों में सुधी पाठक पढ़ चुके हैं।

२. इस श्लोक में एक और काव्यसुषुमा छिपी हुई है। चूंकि अंजनवर्णी मधुकरश्रेणी सहज प्रीतिवश कमलों पर मंडराया करती हैं; अत: उनकी इस पद्म-प्रियता के परिप्रेक्ष्य में महर्षि दुर्वासा ने 'मदीयहृदयाम्भोजे' कहकर अपने हृदय को 'अम्भोज' (कमल) निरूपित किया है।

लेखालभ्यविचित्ररत्नखचितं हैमं किरीटोत्तमं
मुक्ताकाञ्चनकिङ्किणीगणमहाहीरप्रबोधोज्ज्वलम्।
चञ्चच्चन्द्रकलाकलापललितं देवद्रुपुष्पार्चितं
माल्यैरम्ब विलम्बितं सुशिखरं बिभ्रच्छिरस्ते भजे।। ३८।।

अत: परं परदेवताया: सुपूजितं सुभूषितं मस्तकमभिस्तौति— लेखालभ्येति। हे मात:! ते शिरो भजे। हैमं किरीटोत्तमं बिभ्रत्। कथंभूतं किरीटोत्तमम्। लेखालभ्यविचित्ररत्नखचितम्। पुन: कथंभूतम्। मुक्ताकाञ्चनकिङ्किणीगणमहाहीर-प्रबोधोज्ज्वलम्। पुन: कीदृशम्। चञ्चच्चन्द्रकलाकलापललितम्। सुशिखरं चेत्यन्वय:। लेखालभ्यम् अतिनिबिडं यथा स्यात्तथा विचित्ररत्नैर्नानावर्णै: खचितं मण्डितम्। हैमं जाम्बूनदरचितम्। किरीटोत्तमं ब्रह्मादिकानां किरीटापेक्षया। मुक्ता गजमुक्ता:, काञ्चनकिङ्किणीगण: सुवर्णरचित: क्षुद्रघण्टिकासमूह:, तेन सह यो हीरप्रबन्धस्तेनोज्ज्वलं प्रकाशमानम्। चञ्चत् प्रद्योतत् (मान:) चन्द्रकलानां कलाप: समूह:, तेन ललितं मनोहरम्। देवद्रुपुष्पार्चितं कल्पद्रुमकुसुमपूजितम्। माल्यै: पुष्पमालाभि:। अम्ब मात:। विलम्बितं लम्बायमानम् सुशिखरं सुष्ठु शिखरं कोट्यग्रभागम्। बिभ्रत् दधत्। शिर: मस्तकम्। ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या:। भजे प्राग्वत्।।३८।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती ललिता के सुपूजित और सुभूषित मस्तक की वन्दना की गई है। हे माते! मैं अहर्निश आपके उज्ज्वल-धवल शिरोप्रदेश का ध्यान करता हूँ, जो स्वर्ण-निर्मित ऐसे किरीट (मुकुट) से शोभित है, जिस पर

विविध प्रकार के हीरक आदि रत्नों से कलात्मक पच्चीकारी की गई है और जिसमें जड़े गये ये रत्न चन्द्रकला की कलगी के प्रकाश से देदीप्यमान हैं, तथा जिस पर देवपुष्पों की छोटी-छोटी मालायें झूल रही हैं॥३८॥

शृङ्गारादिरसालयं त्रिभुवनैर्माल्यैरतुल्यैर्युतं
सर्वाङ्गीणसदङ्गरागसुरभि श्रीमद्वपुर्धूपितम्।
ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुतं रम्यं त्रिपुण्ड्रं दधद्
भालं नन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामि ते मङ्गलम्॥ ३९ ॥

अत: परं परदेवताया: सभालं साधरयुगं वपु: प्रस्तौति—**शृङ्गारादिरसालयमिति।**

हे जननि! तव वपु:, भालं च अहं ध्यायामि। कथंभूतम्। शृङ्गारादिरसालयम्। पुन: कथंभूतम्। त्रिभुवनैरतुल्यैर्माल्यैर्युतम्। पुन: कीदृशम्। सर्वाङ्गीणसदङ्गरागसुरभि। पुन: कीदृशम्। श्रीमत्। पुन: कथंभूतम्। धूपितम्। पुन: कीदृशम्। ताम्बूलारुण-पल्लवाधरयुतम्। कथंभूतं भालम्। नन्दनचन्दनेन रम्यं त्रिपुण्ड्रं दधत्। मङ्गलमित्यन्वय:। शृङ्गाररसादिनवरसानामालयं निवासस्थानम्। त्रिभुवनै: त्रिभुवने जातानि त्रिभुवनानि तै:। वृद्धिर्वैकल्पिकान्न। माल्यै: पुष्पै:। अतुल्यैर्निरुपमै:। युतं युक्तम्। सर्वाङ्गवर्ती सदङ्गराग: समीचीनोऽङ्गरागस्तेन सुरभि। श्रीमत् श्री शोभा विद्यते यस्य। वपु: स्वरूपम्। धूपितं धूपवासितम्। ताम्वूलेन अरुण आरक्त: पल्लव: अग्रभागो यस्यैतादृशेनाधरेण युतं सहितम्। रम्यं सुन्दरम्। त्रिपुण्ड्रं तिलकम्। दधत्। भालं ललाटम्। नन्दनचन्दनेन नन्दनवनोद्भ-वचन्दनेन। जननि। ध्यायामि भावयामि। ते श्रीपरदेवताया:। मङ्गलं मङ्गलरूपम्॥३९॥

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के अधरों और भाल-प्रदेश सहित सर्वांग की वन्दना की गई है। हे माते! मैं शृंगार आदि नौ रसों के आश्रयभूत आपके सर्वाङ्गीण शरीर का अहर्निश ध्यान करता हूँ, जो अत्यन्त श्रेष्ठ और पवित्र अंगरागों से लिप्त, तीनों लोकों के सर्वश्रेष्ठ पुष्पों की मालाओं से शोभित और अगरु एवं गुग्गुल आदि श्रेष्ठ गन्धों से धूपित है, जिसके भाल-प्रदेश पर इन्द्र के नन्दनवन के चन्दन का तिलक है और जिसका मुखमण्डल ताम्बूल से रंजित अधर से शोभित हैं एवं जिसका मूर्तिमान् अलौकिक सौन्दर्य ध्यान करने वालों के लिये सर्वदा और सर्वथा मङ्गलकारी है।

विमर्श—१. शृंगारादिरसालयम्—काव्यशास्त्र के शृंगार आदि आठ या नौ रस। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की रसमयी और लीलामयी दृष्टि काव्य-शास्त्र के शृंगार आदि रसों से परिपूर्ण है। इसलिये देशिकेन्द्र दुर्वासा ने उनकी देह-यष्टि को

इन रसों का आलय कहा है। भगवान् शङ्कराचार्य ने 'सौन्दर्यलहरी' में भगवती की रसमयी और लीलामयी दृष्टि में इन रसों का निरूपण इस तरह किया है—

शिवे! शृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा
सरोषा गङ्गायां गिरिशचरिते विस्मयवती।
हरादिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजयिनी
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि! दृष्टि: सकरुणा।।५९।।

हे दयामयी माँ! आपकी रसमयी दृष्टि भगवान् शंकर के प्रति शृंगार से आर्द्र (शृंगाररस), इतरजनों अर्थात् दुष्टजनों के लिये घृणामयी (वीभत्स रस), श्रीगंगाजी के प्रति (सौतिया डाह से) कोपमयी (रौद्ररस), भगवान् शिव के अद्‌भुत चरित के प्रति विस्मयमयी (अद्‌भुत रस), शिवजी के आभरणों अर्थात् नागों को देखकर भीतमयी (भयानक रस), कमलों का सौन्दर्य बढ़ाने के लिये उत्साहपूर्ण (वीर रस), सखियों के साथ परिहासमयी (हास्य रस) और मेरे (अर्थात् मेरे जैसे भक्तों के) लिये करुणामयी (करुण रस) है।

भगवान् शंकर ने इन रसों की गणना में शान्त रस का उल्लेख नहीं किया है; क्योंकि काव्यशास्त्र के अनेक आचार्य 'शान्तरस' को रस नहीं मानते। उनका कथन है—चूंकि दृश्य काव्य (नाटक आदि) में शान्त रस के स्थायी भाव (निर्वेद) को अभिनय के द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता, अत: उसका रसत्व सिद्ध नहीं होता।

२. ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुतम्—ताम्बूल (पान) के रस से अरुण अधर। भगवती त्रिपुरा को ताम्बूल अत्यन्त प्रिय है—इतना प्रिय कि एक ध्यानश्लोक में उन्हें 'ताम्बूलपूरितमुखी' कहा गया है—

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागम्
पाशांकुशौ धनुरिषूनपि धारयन्तीम्।
ताम्रेक्षणामरुणमाल्यविशेषभूषां
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि।।

३. सदङ्गरागसुरभि श्रीमद्वपुर्धूपितम्—शरीर के सब अंगों पर लगाये जाने वाले स्निग्ध और सुवासक वे सभी पदार्थ, जिनसे शरीर कान्तिमान बनता है और जो शरीर को सुवासित करते हैं। इसीलिये भगवती त्रिपुरा की चतु:षष्टि (६४) उपचारवती पूजा में सर्वाङ्ग विलेपन के लिये चन्दन-अगरु-कुंकुम-मृगमद-कर्पूर-कस्तूरी और गोरोचन आदि दिव्य गन्ध समर्पित किये जाते हैं।।३९।।

एवं यः स्मरति प्रबुद्धसुमतिः श्रीमत्स्वरूपं परं
वृद्धोऽप्याशु युवा भवत्यनुपमः स्त्रीणामनङ्गायते।
सोऽष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरः श्रीजृम्भितात्मालयः
पृथ्वीपालकिरीटकोटिवलभीपुष्पार्चिताङ्घ्रिर्भवेत्।। ४० ।।

अतः परं परदेवताया ध्यानस्य फलमाह— **एवं यः स्मरतीति।**

हे परदेवते! श्रीमत्स्वरूपमेवं यः स्मरति स वृद्धोऽपि युवा भवति, स्त्रीणां चानङ्गायते, अष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरः श्रीजृम्भितात्मालयश्च भवति पृथ्वीपालकिरीटकोटि-वलभीपुष्पार्चिताङ्घ्रिर्भवेदित्यन्वयः। एवम् अमुना प्रकारेण। यः साधकः। स्मरति भावयति। प्रबुद्धसुमतिः प्रबुद्धा प्रकर्षं प्राप्ता सुमतिर्यस्य। श्रीमत्स्वरूपं श्रीमत्यास्तव स्वरूपं सावयवम्। परं परमसुन्दरम्। वृद्धोऽपि गलितेन्द्रियोऽपि। आशु स्वल्पकालेन। युवा तरुणप्रायः। भवति स्यात्। अनुपमः पुरुषार्थेन। स्त्रीणां यौवनोद्धतानाम्। अनङ्गायते सौन्दर्येण स्वरूपध्यानरतः। अष्टैश्वर्यम् अणिमादिकं गजाश्वादिकं च तेन कृत्वा तिरस्कृता लज्जां प्रापिता अखिलाश्च ते सुराश्च एतादृशः सन्। श्रिया सम्पत्त्या जृम्भितं प्रोल्लसितं आत्मनः स्वकीयमालयं मन्दिरं येन। पृथ्वीपाला राजानस्तेषां किरीटानां मुकुटानां कोटिषु शिखरेषु वलभ्यः स्वेष्टदेवताप्रसादगर्भितदीर्घाकारस्वर्णभूषणानि तदुपरितनपुष्पैरर्चितौ पूजितौ अङ्घ्री चरणौ यस्य। भवेत् स्यात्।।४०।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में पूर्वोक्त प्रकार से परदेवता का ध्यान करने का फल बताया गया है। हे देवि! भाव-विभोर होकर आपके यथाकथित सौन्दर्यमय स्वरूप का अहर्निश ध्यान और चिन्तन करने से आपके भक्त साधक की बुद्धि प्रकृष्ट रूप से विवेकशील हो जाती है। उसके वैभव-प्रताप और सौन्दर्य में अभूतपूर्व वृद्धि हो जाती है। भले ही वह शिथिल-इन्द्रिय वृद्ध हो, परन्तु वह कामवती ललनाओं को कामदेव के समान सुन्दर एवं स्पृहणीय प्रतीत होता है। उसके वैभव तथा सिद्धियों को देखकर देवता भी लज्जित हो जाते हैं। उसके अतुल प्रताप के कारण बड़े-बड़े राजे-महाराजे अर्थात् सत्ताधीश उसकी चरणवन्दना करते हैं।।४०।।

अथ तव धनुः पुण्ड्रेक्षुकृत्प्रसिद्धमतिद्युति-
त्रिभुवनवधूद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधिमण्डलम् ।
सकलजननि स्मारं स्मारं गतः स्मरतां नर-
त्रिभुवनवधूमोहाम्भोधेः प्रपूर्णविधुर्भवेत्।। ४१ ।।

अतः परं देव्यायुधचिन्तनस्य फलमाह— **अथ तव धनुरिति।**

हे सकलजननि! तव पुण्ड्रेक्षुकृद्धनुः त्रिभुवनवधूं प्रति उद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधि-

मण्डलं भवति इति प्रसिद्धम्। कथंभूतं धनुः। अतिद्युति।....नरः स्मारं स्मारं स्मरतां गतः सन् त्रिभुवनवधूमोहाम्भोधेः प्रपूर्णविधुर्भवेदित्यन्वयः। अथ अपरं च। तव श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। धनुः पुण्ड्रेक्षुनिर्मितम्। प्रसिद्धं विख्यातम्। अतिद्युति भूरिकीर्तिमत्। त्रिभुवनवधूं प्रति उद्यज्ज्योत्स्नया कलानिधेश्चन्द्रस्य मण्डलं बिम्बं विरहोत्पादकम्। सकलजननि विश्वमातः। स्मारं स्मारं स्मरन् स्मरन्। गतः प्राप्तः। स्मरतां कन्दर्पताम्। नर उपासकः। त्रिभुवनवधूनां सुरनरनागस्त्रीणाम्। मोहरूपसमुद्रस्य वृद्धिकरः। प्रपूर्णविधुः पूर्णिमाचन्द्र एव स्यात्।।४१।।

पूर्णिमा—इन श्लोकों में भगवती के आयुधों के ध्यान का फल-निरूपण किया गया है।

सर्वप्रथम धनुष के चिन्तन का फल—हे सकलजननि! आपके वाम कर में शोभित पौण्ड्र जाति के गन्ने का धनुष अपनी अद्‌भुत ज्योति के कारण तीनों लोकों की ललनाओं के लिये जगमगाते हुए चन्द्रमण्डल के समान है, जिसका ध्यान और चिन्तन करने से आपका भक्त तीनों लोकों की रमणियों के लिये कामदेव-स्वरूप होकर उनके मोहरूपी सागर के विक्षोभ को बढ़ाने वाला पूर्णिमा का चन्द्रमा बन जाता है।।४१।।

विमर्श—१. पूर्णिमा का चन्द्रमण्डल ललनाजनों के लिये संयोगावस्था में विलास और हर्षवर्धक तथा वियोगावस्था में त्रास और संतापवर्धक होता है। इसके साथ ही पूर्ण चन्द्रमण्डल का एक अन्य गुण भी है। पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल को देखकर समुद्र में ज्वार चढ़ आता है, सागरतल पर उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं। भगवती त्रिपुरा के इक्षु-धनुष का ध्यान करने से उनका भक्त साधक कामिनियों के प्रेमसमुद्र में ज्वार उत्पन्न कर देता है और वे अंग-संग के लिये तरंगित हो जाती हैं।

२. बहुत मोटे तने का जो गन्ना होता है, उसे 'पौंडा' कहते हैं, जो संस्कृत शब्द 'पुण्ड्र' का अपभ्रंश है।

३. दक्षिणामूर्तिसंहिता में भगवती के आयुधों का क्रम इस प्रकार बताया गया है—

दक्षिणाधः करे बाणान् वामाधस्तु शरासनम्।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वे तु सृणिं परम्।।

भगवती के निचले दाहिने हाथ में बाण, निचले बाँयें हाथ में धनुष, बाँयीं ओर के ऊपर वाले हाथ में पाश और नीचे वाले दाहिने हाथ में सृणि अर्थात् अंकुश है।

प्रसूनशरपञ्चकप्रकटजृम्भणागुम्फितं
त्रिलोकमवलोकयत्यमलचेतसा चिन्तयन्।
अशेषरमणीजनस्मरविजृम्भणे यः सदा
पटुर्भवति ते शिवे त्रिजगदङ्गनाक्षोभणे।।४२।।

हे शिवे! यस्त्रिलोकं प्रसूनशरपञ्चकप्रकटजृम्भणागुम्फितम् अमलचेतसा अवलोकयति सोऽशेषरमणीजनस्मरविजृम्भणे त्रिजगदङ्गनाक्षोभणे च पटुर्भवतीत्यन्वयः। प्रसूनानि पङ्कजादीनि। उक्तं च तन्त्रराजे—

कमलं कैरवं रक्तकह्लारेन्दीवरे तथा।
सहकारमिति प्रोक्तं पुष्पपञ्चकमीश्वरि।। इति।

तान्येव शरा वाणास्तेषां पञ्चकं तस्य प्रकटं स्फुटं जृम्भणं विकसनं तत्र आगुम्फितम् एतादृशं त्रिलोकमवलोकयति पश्यति। अमलचेतसा स्थिरान्तःकरणेन, चिन्तयन् भावयन्। अशेषरमणीजनस्मरविजृम्भणे सकलस्त्रीजनस्मरविजृम्भणे। यः साधकः। सदा निरन्तरम्। पटुः समर्थः। भवति। ते परदेवतायाः। शिवे कल्याणरूपे। त्रिजगदङ्गनानां क्षोभणे वशीकरणे।।४२।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में बाणों के ध्यान का फल बताया गया है। यथा—हे शिवे! जो साधक यह भावना और अनुभव करते हुए आपके पाँच पुष्पबाणों का ध्यान करता है कि इन्हीं पुष्पवाणों के विकास से सम्पूर्ण संसार बिंधा हआ है (गुम्फिल है), उसके व्यक्तित्व में रमणीजनों के हृदय को कामभावना से विक्षुब्ध करके उन्हें अपने वश में कर लेने की क्षमता स्वतः ही विकसित हो जाती है।।४२।।

विमर्श—जैसा कि बताया जा चुका है, भगवती के नीचे वाले दाहिने हाथ में पाँच बाण शोभित हैं। ये पाँच बाण फूलों के हैं, इनमें से चार फूल कमलवर्गीय और पाँचवाँ बाण आम्रमंजरी है—

कमलं कैरवं रक्तकह्लारेन्दीवरे तथा।
सहकारमिति प्रोक्तं पुष्पपञ्चकमीश्वरि।।

कमल अर्थात् सूर्यविकासी शुभ्र श्वेत कमल। कैरव अर्थात् चन्द्रविकासी कुमुद। कल्हार अर्थात् रक्तकमल। इन्दीवर अर्थात् नीलकमल एवं सहकार अर्थात् आम्रमञ्जरी।

भगवती के धनुष का नाम 'सर्वसम्मोहन' तथा बाणों का नाम 'सर्वजृम्भण' है।

पाशं प्रपूरितमहासुमतिप्रकाशो
यो वा तव त्रिपुरसुन्दरि सुन्दरीणाम्।
आकर्षणेऽखिलवशीकरणे प्रवीणं
चित्ते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात्।।४३।।

अतः परं पाशचिन्तनप्रभावं प्रतिपादयति— **पाशमिति।**

हे महात्रिपुरसुन्दरि ! अथ च यस्तव पाशं चित्ते दधाति, स प्रपूरितमहासुमतिप्रकाशः सन् जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात्। कथंभूतं तव पाशम्। सुन्दरीणामाकर्षणे अखिलवशीकरणे च प्रवीणम्। इत्यन्वयः। अर्थः स्पष्ट एव।।४३।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के 'पाश' के ध्यान का फल बताया गया है। हे त्रिपुरसुन्दरि! सुन्दरी रमणियों के हृदयों को आकर्षित और वशीकृत करने वाले आपके 'पाश' का जो साधक ध्यान और चिन्तन करता है, उसका चित्त सम्पूर्ण बाह्य एवं आभ्यन्तर ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है अर्थात् वह जीव, जगत्, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा-विषयक रहस्यों से पूर्णतः अवगत हो जाता है। साथ ही तीनों लोकों को अपने वश में अर्थात् अपने अधीन कर लेने की अद्भुत शक्ति प्राप्त करने के लिये उसे कोई प्रयास या साधना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्मल ज्ञान के साथ ही वशीकरण की यह शक्ति सह उत्पाद (By Product) के रूप में उसे सहज ही प्राप्त हो जाती है।।४३।।

विमर्श—'त्रिपुरसुन्दरि' सम्बोधन है। 'त्रिपुरसुन्दरी' अर्थात् त्रिपुर की प्रेयसी या वल्लभा। त्रिपुर नाम है भगवान् परमशिव का। त्रिपुर पद में त्रि (तीन) संख्यावाचक विशेषण है तथा 'पुर' का अर्थ है—शरीर। अतः 'त्रिपुर' का अर्थ हुआ—तीन शरीरों वाला। भगवान् परमशिव के 'त्रिपुर' नाम की व्याख्या करते हुए 'कालिकापुराण' में कहा गया है—

प्रधानेच्छावशाच्छम्भोः शरीरमभवत्त्रिधा।
तस्योर्ध्वभागः सञ्जातः पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
पद्मकेशरगौरांगः कायो ब्राह्मो महेश्वरे।
तन्मध्यभागो नीलाङ्गः एकवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिः कायः स वैष्णवः।
अभवत्तदधो भागे पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
स्फटिकाभ्रमणः शुक्लः कायश्चन्द्रशेखरः।
एवं त्रिभिः पुरैः योगात् त्रिपुरः परमः शिवः।।

भगवान् शम्भु के इच्छा-मात्र करने से उनके शरीर के ऊपरी भाग ने पाँच मुख और चार हाथ वाले गौरांग ब्रह्माजी का, मध्य भाग ने शंख-चक्र-गदा और पद्म धारण करने वाले एकमुख चतुर्भुज श्यामल वर्ण वाले विष्णु का तथा अधोभाग ने स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण के पाँचमुखी चतुर्भुज चन्द्रशेखर का रूप धारण किया। इस तरह तीन शरीरों के योग के कारण भगवान् परमशिव को 'त्रिपुर' कहा जाता है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मा-विष्णु और शिव के समष्टि रूप की संज्ञा 'त्रिपुर' है। ऐसे भगवान् 'त्रिपुर' की वल्लभा होने के कारण अक्षुण्ण सौन्दर्यशालिनी चिर-षोडशी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी कही जाती हैं।

यः स्वान्ते कलयति कोविदस्त्रिलोक-
स्तम्भारम्भणचणमत्युदारवीर्यम् ।
मातस्ते विजयमहाङ्कुशं सयोषान्
देवान् स्तम्भयति च भूभुजोऽन्यसैन्यम्।।४४।।

अतः परमङ्कुशप्रभावं प्रतिपादयति— यः स्वान्त इति। हे मातः! यस्ते विजयमहाङ्कुशं स्वान्ते कलयति स सयोषान् देवान् स्तम्भयति, भूभुजः स्तम्भयति, अन्यसैन्यं च स्तम्भयति। कथंभूतः सः। कोविदः। कथंभूतं विजयमहाङ्कुशम्। त्रिलोकस्तम्भारम्भणचणम्। पुनः कथंभूतम्। अत्युदारवीर्यमित्यन्वयः। यः साधकः। स्वान्ते हृदये। कलयति चिन्तयति। कोविदः विचक्षणः। त्रिलोकस्य स्वर्गमृत्युपातालरूपस्य। स्तम्भः ताटस्थ्यं तस्यारम्भणं कर्तव्यता तत्र चणः दक्षस्तम्। अत्युदारवीर्यम् अत्यन्तमुदारं प्रौढं वीर्यं यस्य तम्। मातर्जननि। ते प्राग्वत्। विजयमहाङ्कुशं विजयप्रदो महाङ्कुशो विजयमहाङ्कुशस्तम्। सयोषान् योषिद्भिः सह वर्तमानान्। देवान् दिवि क्रीडनपरान्। स्तम्भयति स्थगयति। भूभुजः राजानस्तान्। अन्यसैन्यं परसैन्यम्।।४४।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के 'अंकुश' के ध्यान और चिन्तन का फल बताया गया है। हे माते! जो विद्वान् साधक तीनों लोकों का स्तम्भन करने में सक्षम आपके 'अंकुश' का अपने हृदय में ध्यान और चिन्तन करता है, वह स्वर्ग लोक में अपनी-अपनी प्रेयसियों के साथ विहार करने वाले देवताओं तथा संसार के राजाओं की बड़ी से बड़ी सेनाओं को भी स्तम्भित कर देता है अर्थात् उनकी गति और प्रहार-क्षमता को कुंठित कर देता है।।४४।।

चापध्यानवशाद्भवोद्भवमहामोहस्य व्युज्जृम्भणं
प्रख्यातं प्रसवेषुचिन्तनवशात्तत्च्छरव्यं सुधीः।
पाशध्यानवशात् समस्तजगतां मृत्योर्वशत्वं महा-
दुर्गस्तम्भमहाङ्कुशस्य मननान्मायाममेयां तरेत्।।४५।।

अतः परं चतुरायुधध्यानस्य विशेषफलमाह— **चापध्यानवशादिति।**

हे मातः! सुधीः चापध्यानवशाच्चापध्यानतत्परः सन् भवोद्भवमहामोहस्य भवात् संसारादुद्भवो यस्यैतादृशो महामोहस्तस्य व्युज्जृम्भणं विगतमुज्जृम्भणं प्रसरणं यस्मात्तत्तथा करोति इति प्रख्यातं प्रसिद्धम्। प्रसवेषुचिन्तनवशात् पुष्पबाणभावनातत्परः सन् यद्यच्चिन्तयति तत्तत् शरव्यं लक्ष्यं करोति। पाशध्यानवशात् पाशचिन्तनतत्परः सन् समस्तजगतां सकलाहितानां मृत्योः कालस्य वशत्वं नयति। महादुर्गस्तम्भमहाङ्कुशस्य मननात् निरन्तरं चिन्तनादमेयां मायां तरेत्।।४५।।

पूर्णिमा—इस श्लोक में भगवती के चारो आयुधों के ध्यान से प्राप्त समग्र विशेष फल का निरूपण किया जा रहा है। हे माते! आपके चाप (धनुष) का ध्यान करने से संसार में लिप्त रहने से उत्पन्न महामोह का विनाश होता है अर्थात् संसार के प्रति विरक्ति की भावना दृढ़ होती है। पाँच पुष्पबाणों का स्मरण करने से जिस-जिस वस्तु की कामना की जाती है, वह वस्तु प्राप्त हो जाती है। पाश का ध्यान करने से मृत्युपाश का भय नहीं रह जाता अर्थात् वह साधक मृत्यु को भी अपने वश में कर लेता है। मजबूत से मजवूत किले को भी ध्वस्त करने में सक्षम तुम्हारे महा-अंकुश का ध्यान करने से मनुष्य मायाजाल को तहस-नहस कर सकता है अर्थात् माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है।।४५।।

न्यासं कृत्वा गणेशग्रहभगणमहायोगिनीराशिपीठैः
पञ्चाशन्मातृकार्णैः सहितबहुकलैरष्टवाग्देवताभिः।
स श्रीकण्ठादियुग्मैर्निजविमलतनौ केशवाद्यैश्च तत्त्वैः
षड्त्रिंशद्भिर्धराद्यैर्भगवति भवतीं यः स्मरेत् स त्वमेव।।४६।।

अतः परं पूर्वं द्वाविंशतितमश्लोके 'त्वद्रूपस्य गुरोर्मुखारविन्दविवराद्दीक्षां संप्राप्य मुक्तो भवेत्' इत्युक्तम्; चतुर्विंशतितमश्लोके 'त्वां गुरुमभ्युपेत्य त्वामेव कलयेत्तदा मुच्यते' इत्युक्तम्; तर्हि साधकस्य परदेवतातादात्म्यसिद्धिकरं मातृकादिन्यासजालं नोक्तमिति सिंहावलोकनन्यायेनाशङ्क्याह— **न्यासं कृत्वेति।**

हे भगवति! एवं न्यासं कृत्वा भवतीं यः स्मरेत् स त्वमेवेत्यन्वयः। न्यासं गुरु-दर्शितमार्गेण कृत्वा विन्यस्य। गणेशेत्यादिन्यासाः पद्धतिषु स्पष्टाः। निजविमलतनौ निजा स्वकीया विमला पापरहिता तनुः शरीरं तस्याम्। इत्यनेन पापपुरुषदाहादिकृतभूतशुद्धि-प्राणप्रतिष्ठादेहन्यासान् कुर्यादिति सूचितम्। अन्योऽर्थः स्पष्ट एव।।४६।।

पूर्णिमा—हे भगवति! जो साधक अपने निर्मल शरीर में पञ्चाशत् मातृका-न्यास-सहित श्रीकण्ठादि न्यास, केशवकीर्ति न्यास, अष्टवाग्देवता न्यास, धरा आदि

छत्तीस कलान्यास तथा षोढा न्यास के अन्तर्गत गणेश-ग्रह-नक्षत्रन्यास-योगिनी-न्यास, राशिन्यास और पीठन्यास करके आपका स्मरण करता है, वह 'त्वमेव भवति' अर्थात् तुम्हारा ही स्वरूप बन जाता है।।४६।।

विमर्श—तंत्रोपदिष्ट साधना का परम लक्ष्य आत्मरूप को प्राप्त करना है। इस परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये तन्त्रसाधक को स्वयं देवता बनकर इष्टदेवता की पूजा-साधना करनी होती है। स्वयं देवता बनने के लिये अर्थात् स्वयं में देवत्व के स्फुरण के लिये उसे अनेक क्रियायें करनी पड़ती हैं। इनमें सर्वप्रथम है—शरीर का शोधन एवं शाम्भव शरीर की प्राप्ति। एतदर्थ वह यथा-विधान भूतशुद्धि करता है। भूतशुद्धि के बाद अपने शरीर में वह इष्टदेवता की प्राण-प्रतिष्ठा करता है। इसके बाद देवत्वभाव की प्राप्ति के लिये तरह-तरह के न्यास करता है। इन न्यासों में प्रमुखतम है—मातृका न्यास। यह न्यास अन्तर्मातृका और बहिर्मातृका भेद से दो प्रकार का होता है। सृष्टि-स्थिति और संहारक्रम से बहिर्मातृका न्यास के तीन भेद होते है। यह मातृकान्यास सभी संप्रदाय के साधकों के लिये अनिवार्य है। तत्पश्चात् सम्प्रदायभेद के अनुसार मातृकान्यास के अनेक भेद हैं। यथा—श्रीकण्ठादि न्यास, केशवकीर्ति न्यास, गणेश-मातृका न्यास, देवी कला न्यास। श्रीविद्या-परम्परा में श्रीकण्ठादि न्यास, केशवकीर्ति न्यास और देवी कलान्यास किये जाने का विधान है। इनके साथ अनेक प्रकार के कल्पोक्त न्यास हैं। इनमें वशिनी आदि अष्टवाग्देवताओं के साथ मातृकामाला के अष्ट वर्गों का न्यास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीविद्याक्रम में गणेश, ग्रह, नक्षत्र, राशि, योगिनी और पीठन्यास-समन्वित लघु षोढा न्यास का अनिवार्य विधान है। इन न्यासों को करने से साधक इष्टदेवता का प्रतिरूप बनकर (देवं भूत्वा) इष्टदेवता का अर्चन करता है।

इन न्यासों को करने से देवत्वभाव की प्राप्ति कैसे होती है, इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल है। जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है, स्वर और व्यञ्जन-रूप मातृकायें स्वयं ही श्रीविद्या-स्वरूपिणी हैं। वशिनी आदि वाग्देवता, त्रिपुरा आदि चक्रेश्वरी, कामेश्वरी आदि मातायें, डाकिनी आदि योगिनियाँ—ये सभी भगवती त्रिपुरा की ही रूपाभिव्यक्तियाँ हैं। गणेश-ग्रह-नक्षत्र आदि स्वयं भगवती ही हैं; जैसाकि वामकेश्वरी तन्त्र में कहा गया है—

गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।

एक-एक मातृका के साथ भगवती श्रीविद्या की इन शत-सहस्र विभूतियों को अपने निर्मल तन अर्थात् शाम्भव शरीर में विन्यस्त करने से साधक स्वयं देवी का

प्रतिरूप बन जाता है और देवी का इस तरह प्रतिरूप बनकर प्रतिदिन देवी की साधना करने से स्वयं देवीस्वरूप हो जाता है। इन न्यासों का क्रिया-विधान पद्धति-ग्रन्थों में विस्तार से उपलब्ध है।

सुरपतिपुरलक्ष्मीजृम्भणातीतलक्ष्मीः
प्रसरति निजगेहे यस्य दैवं त्वमार्ये।
विविधबहुकलानां पात्रभूतस्य तस्य
त्रिभुवनविदिता सा जृम्भते स्फूर्तिरच्छा।।४७।।

अतः परं परदेवतोपासकस्यैहिकफलमाह— सुरपतिपुरेति।

हे आर्ये! यस्य त्वं दैवं तस्य निजगेहे सुरपतिपुरलक्ष्मीजृम्भणातीतलक्ष्मीः प्रसरति। किं च तस्य सा अच्छा स्फूर्तिर्जृम्भते। कथंभूता। त्रिभुवनविदिता। कथंभूतस्य तस्य। विविधबहुकलानां पात्रभूतस्येत्यन्वयः। सुरपतिरिन्द्रस्तस्य पुरममरावती तत्र या लक्ष्मीः सम्पत्तिस्तस्य जृम्भणं विलासस्तदतीता ततोऽप्यधिकविलासवती। प्रसरति प्रभवति। निजगेहे उपासकालये। यस्य यस्य–कस्यापि। दैवं दैवतम्। त्वं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। आर्ये श्रेष्ठे। विविधबहुकलानां विविधा नानाचमत्कारकारिण्यो बह्व्योऽनेकाः कलाः विद्यास्तासाम्। पात्रभूतस्य निवासप्रायस्य। तस्य त्वदीयस्य। त्रिभुवनविदिता लोकत्रयविख्याता। सा देव्यनुग्रहप्रसादात् (प्राप्ता)। जृम्भते प्रकाशते। स्फूर्तिश्चमत्कृतिः। अच्छा निर्दोषा।।४७।।

पूर्णिमा—हे आर्ये! चमत्कारपूर्ण कलाओं का जानकार जो भी व्यक्ति इष्ट-देवता के रूप में आपकी पूजा करता है, उसके घर में इन्द्रलोक की अपेक्षा कहीं अधिक लक्ष्मी का प्रसार होता है अर्थात् वह धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य के मामले में देवताओं से भी बढ़-चढ़कर होता है।।४७।।

मातस्त्वं भूर्भुवः स्वर्महरसि सुतनस्त्वन्तरिक्षेन्दुसूर्यै-
रात्मा शुक्रामरेन्द्रैरपि निगममहाब्रह्मभिः प्रोतशक्तिः।
प्राणापानादियुक्तैः कलयति सकलं मानसं ध्यानयोगं
येषां तेषां सपर्या भवति सुरकृता ब्रह्मता योगिनां च।।४८।।

अत परं मानसार्चनमाह— मातस्त्वमिति।

अयं श्लोकः पाठभ्रमान्मया न व्याख्यातः। शिष्टैर्विचारणीयः।।४८।।

इस ‘महिम्नस्तोत्र’ के संस्कृत व्याख्याकार श्री नित्यानन्द ने ‘पाठभ्रम’ अर्थात् पाठ में भ्रम या अशुद्धि के कारण इस श्लोक की व्याख्या नहीं की है। इस स्तोत्र के हिन्दी टीकाकार राजगुरु कुलमार्तण्ड पण्डित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री ने भी इस श्लोक की ‘अस्पष्टता’ के कारण इसका हिन्दी अनुवाद नहीं किया है।

इस वस्तुस्थिति के परिप्रेक्ष्य में इस श्लोक का खींचतान कर अर्थ निकालना बौद्धिक धृष्टता होगी।

क्व मे बुद्धिर्वाचा परमविदुषो मन्दसरणिः
क्व ते मातर्ब्रह्मप्रमुखविबुधस्याप्तवचसाम्।
अभून्मे विस्फूर्तिः परतरमहिम्नस्तवनुतिः
प्रसिद्धं क्षन्तव्यं बहुलतरचापल्यमिति मे।।४९।।

अतः परं सविनयं देवीं प्रार्थयति— **क्व मे बुद्धिरिति।**

हे मातः ! इति कारणात् कर्म प्रसिद्धं बहुलतरचापल्यं क्षन्तव्यम्। इतीति किम्। मे मतिः क्व, मे वाचापि क्व, ते परतरमहिम्नस्तवनुतिः क्व। कथंभूता मे मतिः। मन्दसरणिः। कथंभूतस्य मे। परम् अविदुषः। कथंभूता स्तवनुतिः। ब्रह्मप्रमुखविबुधस्याप्तवचसां मन्दसरणिः।।४९।।

पूर्णिमा—हे माते! कहाँ आपकी अपरम्पार महिमा का स्तुति-गान, जिसमें ब्रह्मा आदि सुधीजनों की बुद्धि और वाणी की गति भी मन्द हो जाती है अर्थात् वे भी आपकी जिस महिमा का पूरा-पूरा गुणगान नहीं कर पाते और कहाँ मुझ मन्द-बुद्धि की वाणी। फिर भी आपकी स्तुति करने की मुझमें जो अनायास स्फूर्ति हुई है, उसे मेरी चपलता समझकर मुझे क्षमा करें।।४९।।

विमर्श—यह श्लोक अपनी इष्टदेवता के प्रति मन्त्र-द्रष्टा देशिकेन्द्र दुर्वासा की भक्तिमयी दीनता का अभिव्यञ्जक है। इसके पूर्ववर्ती ४६वें श्लोक में परदेवता-स्वरूपिणी भगवती ललिता की स्वरूपता पाने के लिये भूतशुद्धि और अनेकानेक न्यासपरक कर्मकाण्ड की अनिवार्यता रेखांकित करने के बाद इस श्लोक में इष्टदेवता के प्रति दीन भक्ति की अभिव्यञ्जना करके देशिकेन्द्र ने यह लक्ष्य रेखांकित किया है कि तन्त्रोपदिष्ट साधना केवल कर्मकाण्ड का पर्याय नहीं है। इस साधना की आधारभूमि देवता के प्रति भक्ति ही है।

इस तथ्य को केवल महर्षि दुर्वासा ने ही नहीं; अपितु अनेक भक्त साधकों ने प्रतिपादित किया है। पुष्पदन्त ने शिवमहिम्नस्तोत्र में, नीलकण्ठ दीक्षित ने आनन्दसारस्तव में, गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश में रघुकुल की महिमा-निरूपण करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरम्मोहात् उडुपेनाऽस्मि सागरम्।।

प्रसीद परदेवते मम हृदि प्रभूतं भयं
विदारय दरिद्रतां दलय देहि सर्वज्ञताम्।
विधेहि करुणानिधे चरणपद्मयुग्मं स्वयं
विदारितजरामृति त्रिपुरसुन्दरि श्रीशिवे॥५०॥

अत: परं साधकमनोगतं देवीं विज्ञापयति— प्रसीदेति।

हे परदेवते! त्वं प्रसीद प्रसन्ना भव। हे करुणानिधे स्वयं चरणपद्मयुग्मं विधेहि विशेषेण ध्यानयोगगम्यं कुरु। कथंभूतं विदारितजरामृति। अन्योऽर्थ: स्पष्ट एव॥५०॥

पूर्णिमा—अपनी धृष्टता-पूर्ण चपलता के लिये भगवती से क्षमा मांगने के बाद महर्षि दुर्वासा ने इस श्लोक में इष्ट-देवता के चरणों में आत्म-निवेदन प्रस्तुत किया है। महर्षि दुर्वासा कहते हैं—हे परदेवते! मेरे हृदय में व्याप्त भय का निवारण करो! हे करुणानिधे! मेरी दरिद्रता का निवारण करो! हे त्रिपुरसुन्दरि! मुझे सर्वज्ञता प्रदान करो। हे श्रीशिवे! जरा-मरण का नाश करने वाले अपने चरण-कमलों को मेरे हृदय में निवास करने दो॥५०॥

विमर्श—इस श्लोक में इष्टदेवता को चार विशेषणों से सम्बोधित करते हुए महर्षि दुर्वासा ने 'चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवो चतुर्भुज:' की परिपाटी में उनसे चार वरदान मांगे हैं। प्रथम है—हृदय में व्याप्त भय का निवारण। यह भय है—जन्म और मृत्यु के बन्धन का। इस भय से निवारण का अर्थ है—मुक्ति। महर्षि दुर्वासा ने परदेवता से प्रथम वरदान 'मुक्ति' का मांगा है। दूसरा वरदान है—दरिद्रता का उन्मूलन। हम भले ही 'अर्थो मूलं अनर्थानाम्' कहकर अपने को तसल्ली देते रहें, मगर सत्य यह है कि अर्थहीनताजन्य दरिद्रता का संताप मनुष्य को जीते जी जला डालता है। इस संताप से मुक्ति के लिये दरिद्रता के उन्मूलन का वरदान मांगा गया है। तीसरा वरदान है—सर्वज्ञता, सब कुछ जानने की क्षमता का। कारण यह कि सद्ज्ञान से ही विवेक आता है और विवेक ही मनुष्य को अपराधपथ पर जाने से रोकता है। चौथा वरदान है—इष्टदेवता के चरण-कमलों के प्रति अनन्य निष्ठा और भक्ति का और यह पूर्णत: उसी समय सम्भव है, जब इष्टदेवता के चरण-कमलों का भक्त के हृदय में शाश्वत रूप से वास रहे।

इति त्रिपुरसुन्दरीस्तुमिमां पठेद्य: सुधी:
स सर्वदुरिताटवीपटलचण्डदावानल:।
भवेन्मनसि वाञ्छितं प्रचुरसिद्धिऋद्धिर्भवे-
दनेकविधिसंपदां पदमनन्यतुल्यो भवेत्॥५१॥

इति पूर्वोक्तां त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिं महिम्नस्तवरूपामिमां मत्कृतां पठेत् प्रतिदिनमावर्तयेद्यः भक्तः सुधीः कृतनिश्चयः सः सर्वदुरिताटवीपटलं सर्वपापारण्यसमुदायं प्रतिचण्डदावानलो भवेत्। तस्य मनसि वाञ्छितं च भवेदित्यादि। सुगममन्यत्।।५१।।

पूर्णिमा—जो बुद्धिमान साधक इस त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है, वह पापों के जंगल के लिये दावानल-स्वरूप हो जाता है अर्थात् उसके सभी पाप जल जाते हैं। वह जिस किसी वस्तु की इच्छा करता है, उसे उस वस्तु की प्राप्ति होती है। अनेक सिद्धियों और ऋद्धियों के स्वामी उक्त साधक के घर में अनेक प्रकार की अतुलनीय सम्पदायें भरी पड़ी रहती हैं।।५१।।

संगीतं सरसं विचित्रकवितामाम्नायवाक्यस्मृतिं
व्याख्यानं हृदि तावकीनचरणद्वन्द्वं च सर्वज्ञताम्।
श्रद्धां कर्मणि शाम्भवेति विपुलं श्रीजृम्भणं मन्दिरे
सौन्दर्यं वपुषि प्रदेहि जगतामम्बेश्वरि श्रीशिवे।। ५२।।

पुनर्मनोगतं प्रार्थयति— **सङ्गीतमिति**। अर्थ स्पष्टः।।५२।।

पूर्णिमा—सारे संसार की कल्याणकारिणी माँ! तुम सारे संसार की ईश्वरी हो। हे शिवे! आप मेरे संगीत को सरसता और मेरी कविता को चमत्कार प्रदान करो। सारे आम्नायों के वाक्य अर्थात् उपदेश मुझे सदैव स्मरण रहें, मुझे उनकी व्याख्या और निर्वचन करने वाली सर्वज्ञता प्रदान करो। आपके चरणकमल मेरे हृदय में सदा निवास करें, शाम्भव कर्म अर्थात् शाक्त-साधना में मेरी श्रद्धा बनी रहे, मेरे घर में श्री (लक्ष्मी) की नित्यप्रति वृद्धि होती रहे तथा मेरे शरीर में सौन्दर्य बना रहे।।५२।।

विमर्श—'संगीत में सरसता'—गीत-वाद्य और नृत्य—इन तीनों के समुच्चय का नाम संगीत है। जब इन तीनों का सम्यक् रूप से सामञ्जस्य होता है तब उसमें सरसता अर्थात् हृदय को आह्लाद करने की क्षमता आती है।

जिसे सुनकर श्रोता चमत्कृत-अभिभूत हो जाय, वह वाक्य काव्य है और यह उसी समय सम्भव है, जब वह आचार्य जयदेव की इस सर्वाङ्गीण कसौटी पर खरी उतरे—

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्काव्यनामभाक् ।।

वह छन्दोभंग, ग्राम्यत्व आदि दोषों से मुक्त हो, जिसमें अक्षरसंहति आदि लक्षणों और वैदर्भी आदि रीतियों का सम्यक् रूप से निर्वाह हुआ हो, उपमा-रूपक-श्लेष आदि अलंकारों से अलंकृत हो, जो सरस हो अर्थात् जिसमें शृंगार आदि रसों

की अभिव्यञ्जना हो और जो प्रसाद आदि गुणों से भरपूर हो—ऐसा वाक्य काव्य कहलाता है।

श्रद्धां कर्मणि शाम्भवेति—भगवान् शम्भु और शाम्भवी के मुखारविन्द से विर्गत आगम-शास्त्र में प्रतिपादित कर्मों के प्रति श्रद्धा। अर्थात् आगम-शास्त्र में बताये गये क्रिया-विधान का मैं पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करता रहूँ। इनके सम्पादन में 'श्रद्धा' अनिवार्य तत्त्व है, क्योंकि श्रद्धा के बिना कोई भी शुभ कर्म फलदायी नहीं होता; वह पाखण्ड या दिखावा बनकर रह जाता है। यथा—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ! न च तत्प्रेत्य नो इह।। (गीता)

श्रद्धा के बिना किया गया हवन, दिया गया दान, किया गया तप तथा कोई भी सत्कर्म, हे पार्थ! असद् ही होता है। उसका न तो इस लोक में और न ही उस लोक में कोई फल मिलता है।

सौन्दर्यं वपुषि—शरीर का सौन्दर्य। निरोगिता और सभी इन्द्रियों एवं अवयवों की कार्यशक्ति या कार्य-क्षमता ही शरीर का सबसे बड़ा सौन्दर्य है।

पृथ्वीपालप्रकटमुकुटस्त्रग्रजोरञ्जिताङ्घ्रि-
र्विद्वत्पूजास्तुतिशतसमाराधितो बाधितारिः।
विद्याः सर्वाः कलयति हृदा व्याकरोति प्रवाचा
लोकाश्चर्यैर्नवनवपदैरिन्दुबिम्बप्रकाशैः ।।५३।।

अतः परं महिम्नस्तोत्रपाठनिरतस्यैहिकफलमाह— **पृथ्वीपालेति**। अर्थः स्पष्ट एव।।५३।।

पूर्णिमा—अनेक राजाओं और महाराजाओं द्वारा मुकुट-सहित सिर झुकाकार प्रणाम किये गये विद्वान् जन भी इस त्रिपुरमहिम्नस्तोत्र का नित्यप्रति पाठ करने वाले त्रिपुराभक्त की स्तुति करते हैं। उसके शत्रुओं का स्वयमेव विनाश हो जाता है। सभी विद्यायें उसके हृदय में स्वयं प्रकाशित हो जाती हैं और वह चन्द्रबिम्ब के समान अपनी मनोहारिणी वाणी से शास्त्रों के अर्थों की नये-नये पदों से आश्चर्यकारक व्याख्या करने लगता है।।५३।।

भूष्यं वैदुष्यमुद्यद्दिनकरकिरणाकारमाकारतेजः
सुज्ञानं भूरिमार्गं निगमनिगमनं दुर्गमं योगमार्गम्।
आयुष्यं ब्रह्मपोष्यं हरगिरिविशदां कीर्तिमभ्येत्य भूमौ
देहान्ते ब्रह्मपारं परतरचरणाकारमभ्येति विद्वान्।।५४।।

स विद्वान् भूमौ प्रोक्तमेतदभ्येत्य देहान्ते परतरचरणाकारं ब्रह्मपारमभ्येतीत्यन्वयः। भूष्यं भूषणम्। वैदुष्यं पाण्डित्यम्। आकारतेजः दिनकरकिरणाकारम्। भूमिमार्गं सार्वपथीनम्। सुज्ञानं निगमनिगमनं च निगमानां वेदानां निगमनं व्याख्यानं करोति च। दुर्गमं दुष्प्राप्यम्। योगमार्गं योगाभिनिवेशम्। ब्रह्मपोष्यं ब्रह्मणा तुल्यम्। आयुष्यं कल्पान्तस्थायित्वम्। हरगिरिविषदां कैलासवदुज्ज्वलाम्। कीर्तिमभ्येत्य अनुभूय। विद्वान् विद्योपासकः। देहान्ते शरीरत्यागानन्तरम्। ब्रह्मपारम् अपारं ब्रह्मस्वरूपम्। परतरचरणाकारं परतरायाः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः चरणाकारं निर्वाणं चरणरूपमभ्येति प्राप्नोति।।५४।।

पूर्णिमा—भगवती के अर्चन के बाद इस त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र का नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक पाठ करने वाले साधक की आयु ब्रह्माजी के समान होती हैं अर्थात् वह चिरायु होता है। निगम अर्थात् ऋक्-यजुः साम एवं अथर्व—इन चारो वेदों तथा उनके निगमनों अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष-नामक छः अंगों सहित सब प्रकार के शास्त्र-ज्ञान में उसकी पारंगतापूर्ण विद्वत्ता उगते हुए सूर्य की किरणों के समान तेजोवती होती है, दुर्गम योगमार्ग का वह मर्मज्ञ होता है, उसकी कीर्ति (यश) भगवान् गिरीश के धाम कैलाश पर्वत के समान विस्तृत, व्यापक और धवल होती है। अमित आयु वाला ऐसा साधक जीवन भर मान-सम्मान-कीर्ति भोगकर मृत्यु के उपरांत परब्रह्म-स्वरूपिणी के चरणाकार अर्थात् निर्वाण चरण को प्राप्त कर लेता है।।५४।।

विमर्श—१. 'ब्रह्मपोष्यं आयुष्यं' अर्थात् ब्रह्माजी के समान कल्पान्त आयु। तात्पर्य है—अमित आयु।

२. हरगिरिविशदां कीर्त्तिम्—हर-गिरि अर्थात् कैलाश। कैलाश पर्वत अत्यन्त उच्च, दुर्लंघ्य, स्थायी और विशाल है। सदा-सर्वदा हिम से आच्छादित रहने के कारण उसका वर्ण धवल है। कवि-परम्परा में कीर्ति या यश का रंग श्वेत धवल माना गया है। अतः त्रिपुराभक्त की कीर्ति की उच्चता-विशालता और धवलता के लिये उसकी उपमा कैलाश पर्वत से दी गई है।

३. परतरचरणाकार—पूर्णाभिषेक के बाद चरण-चतुष्टय की दीक्षा होती है। ये चार चरण हैं—१. रक्तचरण, २. शुक्लचरण, ३. मिश्रचरण और ४. निर्वाण चरण। गुरुमुखैकगम्य ये चार चरण भगवती (शक्ति) के हैं। भगवान् शम्भु के चार चरण हैं—१. प्रकाशचरण, २. विमर्शचरण, ३. प्रकाशविमर्श (मिश्र) चरण और ४. निर्वाणचरण। निर्वाणचरण प्राप्त कर लेने पर पुनः जन्म नहीं होता।

दुर्वाससा विदिततत्त्वमुनीश्वरेण
विद्याकलायुवतिमन्मथमूर्तिनैतत् ।
स्तोत्रं व्यधायि रुचिरं त्रिपुराम्बिकाया
वेदागमोक्तपटलैर्विदितैकमूर्तिः ॥५५॥

अतः परं दुर्वासामुनिः स्वकृतस्तोत्रे स्वख्यात्यर्थं स्वनामनिबन्धनं करोति—**दुर्वाससेति।**

दुर्वाससा त्रिपुराम्बिकायाः स्तोत्रं व्यधायि कृतमित्यन्वयः। दुष्टं दुःखदं शणसूत्रनिर्मितवल्कलव्याघ्रचर्मगैरिकरञ्जितवस्त्रादिकं वासो यस्य। विदितं ज्ञातं तत्त्वमुपनिषत्सारं येन मुनिना महायोगीश्वराणामीश्वर आचार्य एतादृशेन। विद्यारूपाः कलारूपाश्च या युवतयः तासां मन्मथमूर्तिना तत्प्रादुर्भावकारकत्वात्। स्तोत्रं श्रीत्रिपुरमहिम्नाख्यम्। व्यधायि कृतम्। रुचिरं देवीप्रीतिकरम्। त्रिपुराम्बिकायाः। कथंभूतायाः। वेदोक्तैरागमोक्तैश्च पटलैः स्वरूपनिरूपकग्रन्थैर्विदिता ज्ञातैका मूर्तिः स्वरूपं यस्याः।।५५।।

पूर्णिमा—एक सौ आठ उपनिषदों के मर्मज्ञ तथा सम्पूर्ण कलाओं का मथन करने वाले मुनीश्वर दुर्वासा के द्वारा चारो वेद और चौंसठ तत्त्वों एवं पटलों द्वारा निरूपित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के प्रीतिकर इस त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र की रचना की गई।।५५।।

विमर्श—'दुर्वाससा' अर्थात् दुर्वासा के द्वारा। सन के सूत्रों अर्थात् पटसन से निर्मित वस्त्रों अथवा वृक्षों की छाल के दुस्सह वस्त्रों को धारण करने वाला दुर्वासा।

वेदागमोक्त—वेदों और आगमों द्वारा कहे गये। भगवान् शिव द्वारा उपदिष्ट शास्त्र आगम कहलाता है। इन ग्रन्थों के द्वारा प्रकट या अभिव्यक्त की गई मूर्ति।

सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान्।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः ॥५६॥

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनमादर्शस्तथा मर्दलो
भेरीशङ्खमृदङ्गकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा चैतत्समस्तं मया
संकल्पेन समर्पितं ननु शिवे संतुष्टये कल्पताम्।।
उच्चेषु नीचेष्वपि दर्शनेषु प्रकाशते देवि तव स्वरूपम्।
समुज्ज्वलत्येव हि यज्ञवाटे मातङ्गवेश्मन्यपि जातवेदाः।।

इति त्रैपुरं श्रीमहिम्नं गुरूक्त्या मया व्याकृतं प्रीतये सिद्धये च।
सतां साधकानां सुविद्यैः सुधीरैश्चिरं लोकनीयं हृदा निश्चलेन।।
यत्रैव यत्रैव मनो मदीयं तत्रैव तत्रैव तव स्वरूपम्।
यत्रैव यत्रैव शिरो मदीयं तत्रैव तत्रैव पदद्वयं ते।।

इति श्रीदुर्वाससा मुनीन्द्रेण विरचितं श्रीत्रिपुर-
सुन्दरीमहिम्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

सतामसतां चानुग्रहनिग्रहार्थं गृहीतः मुनिविग्रहो येन। भगवान् महानुभावः। सर्वासां चतुर्वेदोक्तानाम् उपनिषदां तत्त्वनिरूपिकाणाम्। जयति सर्वोत्कर्षेण विजयते। देशिकः प्रथम आचार्यः।।५६।।

पूर्णिमा—सज्जन पुरुषों पर अनुग्रह करने और दुष्ट पुरुषों को दण्ड देने के लिये मुनि का विग्रह धारण करने वाले तथा सभी उपनिषदों के मर्मज्ञ प्रथम देशिक भगवान् दुर्वासा की सर्वत्र जय हो।।५६।।

भगवान् दुर्वासा-प्रणीत 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र' की 'पूर्णिमा'
हिन्दीटीका पूर्ण हुई

★

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

(हिन्दी टीका सहित)

श्री एस.एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित

- सर्वोल्लासतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- श्रीसाम्बपुराण
- देवीपुराण
- शाबरमन्त्रसा [illegible] भाग)
- नीलसरस्वती [illegible]
- सौभाग्यलक्ष्मी [illegible]

श्रीश्यामाकान्त [illegible] लिखित

- श्रीविद्या-सा [illegible] सम्पूर्ण)
- भारतीय श [illegible]
- नाथसम्प्रदाय [illegible]
- ब्रह्मास्त्रविद्या [illegible] साधना
- काश्मीर शैवदर्श [illegible] शास्त्र
- मुद्राविज्ञान एवं सा [illegible]
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका
- शिवसूत्र
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- मेरुतन्त्र (1-5 भाग सम्पूर्ण)

श्री राधेश्याम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित

- स्वच्छन्दतन्त्र (1-2 भाग)
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- महाकालसंहिता (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)
- शक्तिसङ्गमतन्त्र (काली-तारा-सुन्दरी-छिन्नमस्ताखंड)
- तारिणीपारिजात
- वामकेश्वरीमतम्
- श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र
- तन्त्रालोक [illegible]

श्रीजगदीश [illegible] अनुदित

- त्रिपुरार [illegible] एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरा [illegible]

श्रीपरम [illegible] अनुदित

- तन्त्रसा [illegible]
- कुला [illegible]
- नित्योत [illegible] कसद्ग्रन्थ)

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- श्रीविपरीतप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- कामकलाकालीसपर्यापद्धति
- वटुकभैरवसपर्या
- (आपद् उद्धारक) श्रीविनायकशान्तिप्रयोग

श्री मधुसूदन प्रसाद शुक्ल द्वारा अनुदित

- श्रीललितास्तवरत्न एवं त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र
- श्रीतत्त्वचिन्तामणि (श्रीविद्यासाधनात्मक ग्रन्थ)
- त्रिपुरासारसमुच्चय
- श्रीसूक्तविधान

ISBN : 978-93-86554-86-4

9 789386 554864

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in